UNIVERSAL LIBRARY

OU_182253

UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H82 H28V Accession No. G.H. 2985

Author हरिकृष्ण प्रेमी

Title विषपान १९५८

This book should be returned on or before the date last marked below.

विष-पान

['बंगाल-हिन्दी-मण्डल' द्वारा पुरस्कृत ऐतिहासिक नाटक]

लेखक

हरिकृष्ण 'प्रेमी'

१९५८

आत्माराम एण्ड संस

प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता

काश्मीरी गेट

दिल्ली-६

COPYRIGHT © ATMA RAM & SONS, DELHI-6

प्रकाशक
रामलाल पुरी
संचालक
आत्माराम एण्ड संस
काश्मीरी गेट
दिल्ली-६

☞ लेखक की अन्य रचनाएँ ☜

छाया (नाटक)	१.००
स्वप्न-भंग (नाटक)	२.००
उद्धार (नाटक)	२.००
शपथ (नाटक)	२.५०
शतरंज के खिलाड़ी (नाटक)	२.००
बादलों के पार (एकांकी)	३.००
रूप-दर्शन (सचित्र कविताएँ)	६.००
वन्दना के बोल (कविताएँ)	२.५०
आँखों में (कविताएँ)	२.५०

आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली-६

पंचम संस्करण, १९५८
मूल्य रु० २.००

मुद्रक
मूवीज़ प्रेस
चावड़ी बाज़ार
दिल्ली-६

प्रिय पुत्री 'प्रभा' को

दीप-सी उजड़ी कुटी में जल रही तू।
जल स्वयं जग को बना उज्ज्वल रही तू॥
है भयानक रात, आँधी चल रही है।
किंतु तेरी ज्योति बन संबल रही है॥
अयि प्रभा, मैं स्नेह तुझको दे न पाया।
इसलिए तेरे लिए 'विष-पान' लाया॥

तेरा पिता—
'प्रेमी'

वक्तव्य

पंजाब के भयंकर हत्याकांड ने मुझे भी लाहौर से उखाड़ फेंका और अभी तक मैं जीवन को किसी भूमि में स्थिर करने के प्रयत्न में रहा। जब साँस लेने को भी सहारा नहीं पा रहा था तब कैसा साहित्य-सृजन और कैसा प्रकाशन; अतः इतने दिन प्रेमी पाठकों से मुझे दूर रहना पड़ा।

अब फिर मेरी पुस्तकों का प्रकाशन संभव हो सका है। 'विष-पान' का यह चौथा संस्करण पाठकों के सामने है। आज देश स्वतंत्र है—किंतु उसकी नस-नस में अभी तक गुलामी के संस्कार बसे हुए हैं इसलिए जो विचार मैंने कई वर्ष पहले दिये थे वे आज भी मननीय हैं।

'राजस्थान' को एकता के लिए 'विष-पान' की नायिका 'कृष्णा' ने विष-पान किया था—और कल ही महात्मा गाँधी ने भारतीय एकता के लिए अपने प्राण दिये हैं। इतना बड़ा बलिदान लेकर भी हिन्दुस्तानियों ने राष्ट्रीय एकता का महत्त्व नहीं समझा। इसीलिए मुझे सांस्कृतिक और राष्ट्रीय एकता का राग बार-बार गाना पड़ रहा है।

—हरिकृष्ण 'प्रेमी'

पुकार

'विष-पान' का आनन्द लेने के पहले मेरी दो बात सुन लीजिए। ज्यों-ज्यों मेरा हृदय 'भारती' की सेवा करने को अधिकाधिक उत्सुक होता है त्यों-त्यों मेरा जीवन अधिक जटिलताओं के जाल में फँसता जाता है। विपरीत परिस्थितियों के थपेड़े खाते हुए भी जो अस्त-व्यस्त अक्षर मेरी लेखनी से लिखे जा सके हैं, उनकी साधारण पाठकों और कला-पारखी समालोचकों ने सराहना की है। इससे मेरे हृदय को सन्तोष हुआ है। मेरे साहित्य को मेरे देश ने चाहा है। स्वर्गीय पं० रामचन्द्र शुक्ल, डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, स्व० मुन्शी प्रेमचन्द, श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन, पं० माखनलाल चतुर्वेदी और श्री हरिभाऊ उपाध्याय आदि हिंदी-क्षेत्र के महारथियों ने मेरी रचनाओं का मोल बहुत ऊँचा आँका है। गुजराती और मराठी के सिद्धहस्त लेखक काका कालेलकर ने मेरे 'रक्षा-बन्धन' नाटक के गुजराती अनुवाद की भूमिका में १६ पृष्ठों में उसका परिचय दिया है और महात्मा गांधी के दाहिने हाथ स्व० श्री महादेव देसाई ने भी उसकी सराहना में बहुत सुन्दर शब्द लिखे हैं। उर्दू-जगत् ने भी उर्दू-भाषा के प्रसिद्ध साहित्य-सेवी श्री मणिराम 'दीवाना' कृत 'रक्षा-बंधन' के अनुवाद की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। अभी-अभी मेरे 'छाया' नाटक के उर्दू-संस्करण 'पतवार' की 'सीमाब' साहब-जैसे उर्दू भाषा के आचार्य ने बड़ी प्रशंसा की है। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने 'रक्षा-बन्धन' पर मानसिंह और 'स्वप्न-भङ्ग' पर रत्नकुमारी-पुरस्कार प्रदान किया है। इन प्रशंसाओं ने मुझे अपनी दुर्बलताओं की ओर से आँखें फेर लेने की दुर्मति नहीं दी है। मैं जानता हूँ कि मेरी साधना अभी अधूरी है, फिर भी हिंदी-भाषा के नाटक-साहित्य में मैं अपने नाटकों को नगण्य नहीं

समझता। नाटक-साहित्य के क्षेत्र में यह मेरी १२वीं भेंट है। इसके पहले 'स्वर्ण-विहान' (पद्य-नाटिका), 'रक्षा-बंधन', 'शिवा-साधना', 'प्रतिशोध', 'आहुति', 'स्वप्न-भङ्ग', 'मित्र' (ऐतिहासिक) 'पाताल-विजय' (पौराणिक), 'बंधन' और 'छाया' (सामाजिक नाटक) और 'मंदिर' (एकांकी नाटकों का संग्रह) नामक पुस्तकें पाठकों के सामने आ चुकी हैं। अब 'विष-पान' भी उपस्थित है जिसे प्रकाशित होने के पहले ही बंगाल-हिंदी-मंडल ने पुरस्कृत किया है।

'यथार्थवाद' के नाम पर समाज के गंदे अंगों का चित्र खींच देना मेरे साहित्य का उद्देश्य नहीं है। यूरोपीय साहित्य और सभ्यता से प्रभावित हिंदी के कुछ नवीन समालोचक मेरे नाटकों में नैतिकता का दोष निकालते हैं। मैं यह चाहता हूँ कि मेरे देशवासी स्वस्थ विचार वाले, स्वाभिमानी, स्वाधीन-चेता, वीर पराक्रमी, संयमी सहृदय और ईमानदार हों। मैं समझता हूँ ऐसी इच्छा करना पाप नहीं है। फिर भी समाज में जिन्हें नीच और घृणित समझा जाता है उनके प्रति मेरा दृष्टि-कोण सहानुभूतिपूर्ण है। वे अपने कुकार्यों के लिए उतने उत्तरदायी नहीं हैं जितने कि वे लोग जिन्होंने उन्हें इस वातावरण और परिस्थिति में डाला है जिससे वे पाप करने को बाध्य होते हैं।

'प्रगतिवाद' के नाम पर प्रत्येक प्राचीन संस्कार के विरुद्ध युद्ध का डंका आज के अनेक साहित्य-सेवियों ने बजाया है। मैं प्राचीन कूड़े-कर्कट का पोषक नहीं हूँ। फिर भी प्राचीन होने के कारण ही कोई चीज़ बुरी है, यह मैं मानने को प्रस्तुत नहीं हूँ। हमें अपने समाज के सब नियम और संस्कार आज की आवश्यकता की कसौटी पर कसने हैं। जो हमारे राष्ट्र-निर्माण में सहायक हों, उन्हें स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। प्रत्येक देश की अपनी आवश्यकताएं होती हैं जो वस्तु या विचार यूरोपवासियों के लिए उपयोगी और लाभप्रद है वह भारत के लिए

भी वैसा ही होगा, यह विचार भ्रम से खाली नहीं है। असंगत और उच्छृंखल 'भौतिकवाद' यूरोप को भीषण स्वार्थ-परता और भयंकर हिंसा-वृत्ति की ओर ले गया है। संपूर्ण सांसारिक वैभव की प्राप्ति के बाद भी वहाँ सुख-शांति नहीं है। फिर क्यों हम उनका अनुकरण करके अपनी मानसिक कंगाली का परिचय दें। मेरे विचार सर्वथा मेरे देश की आवश्यकताओं के अनुकूल हैं।

मैंने अपने देश के इतिहास को ध्यानपूर्वक पढ़ा है। उसमें अपने देश के वर्तमान पतन के कारण खोजे हैं। इस देश के समान निर्बल देश संसार में दूसरा कोई नहीं है और इसके समान शक्तिवान भी नहीं है। जिस समय संपूर्ण भारत एक होकर खड़ा हुआ संसार की कोई शक्ति इस पर विजय न पा सकी। पौराणिक युग की बातों को संसार कपोल-कल्पित कहानियाँ भी कह ले तब भी गुप्त-वंश और मौर्य-वंश के समय का भारतीय पराक्रम और वैभव देश की शक्ति को प्रकाशित करता है। दिल्ली के अन्तिम हिन्दू-सम्राट् पृथ्वीराज चौहान के समय हमारा देश अनेक छोटे राज्यों में बट चुका था—और प्रत्येक राजा अपने वंश-गौरव के अभिमान में दूसरे से लोहा लेने को प्रस्तुत था, ऐसे समय में ही विदेशी शक्ति भारत पर विजय प्राप्त कर सकी। संपूर्ण देश के हित को भुलाकर अपने राज्य और वंश तक अपनी दृष्टि को सीमित कर लेना ही वह भूल है जिसके कारण यह देश फिर उन्नति न कर सका।

भारत के मुसलमान राज्यों का इतिहास इससे भिन्न नहीं है। अला-उद्दीन की शक्ति और अकबर की बुद्धिमत्ता ने जब देश को एक सूत्र में बाँधा उस समय बाहर के आक्रमण भारत पर सफल नहीं हुए। जब पठान राज्य अनेक टुकड़ों में विभाजित हो गया तब बाबर को आक्रमण करने का साहस हुआ। मुग़ल साम्राज्य जब छिन्न-भिन्न होने लगा तब अहमदशाह अबदाली और नादिरशाह को इस देश पर चढ़ दौड़ने का

साहस हो सका। पठानों और मुग़लों के समानधर्मी होने पर भी युद्ध के मैदान में आमने-सामने खड़े होने में कोई हिचक पैदा नहीं हुई। जभी एक साम्राज्य समाप्त हुआ—भारत की अखण्डता नष्ट हुई—तभी किसी बाहरी शक्ति ने इसकी स्वाधीनता पर आक्रमण किया है। राष्ट्रीय एकता का अभाव इस देश की सबसे बड़ी कमज़ोरी है। इस संघर्ष के युग में यदि हम ऊँचा सिर करके चलना चाहते हैं तो पहले राष्ट्रीय एकता स्थापित करें। मैंने अपने ऐतिहासिक नाटकों में इतिहास को इस रूप में उपस्थित किया है जिससे देश-प्रेम और राष्ट्रीय एकता की भावनाएं पनपें।

मेवाड़ की राजकुमारी कृष्णा का 'विष-पान' या बलिदान राजस्थान के इतिहास की अत्यन्त करुणाजनक घटना है। वह समय था जब राजपूत राजवंश वंशाभिमान के उन्माद में देश के राजनीतिक भविष्य को भूल गए थे। छोटी-छोटी बातों पर ये लोग लाखों-करोड़ों रुपए और हज़ारों मस्तक लुटा देते थे। यही धन-जन देश को शक्तिवान बनाने में व्यय होता तो ज़माने का नक्शा ही बदल जाता। राजपूतों की जिस नासमझ उन्मत्तता ने कृष्णा को विष-पान करने के लिए बाध्य किया वही अनेक रूपों में देश के पतन का भी कारण हुई। हमने अपने हाथों से अपने देश की स्वाधीनता को ज़हर पिला दिया।

आज भी हमारे देश में हिन्दू-हित मुस्लिम-हित और सिख-हित के तराने गाए जा रहे हैं। पाकिस्तान, आज़ाद पंजाब तथा दलित वर्ग के संरक्षण की समस्याएं हमारे सामने खड़ी हैं। सदियों से भारत ने जो भूल की है—वही अब भी जारी है। जो स्वाधीनता देश के विभाजन के बाद मिलेगी वह अन्य विदेशी शक्तियों को भारत पर आक्रमण करने को आमंत्रित करेगी। ज़माने में अच्छे-बुरे व्यक्ति होते आए हैं, होते रहेंगे। यह भी हो सकता है कि किन्हीं मुसलमान बादशाहों ने हिन्दुओं

पर अत्याचार किये हों—यह भी हो सकता है कि कुछ हिन्दुओं ने मुसलमानों के साथ अच्छा व्यवहार न किया हो—लेकिन उन बातों को याद सदा ताज़ा बनाए रखने से अब लाभ क्या है। एक हिन्दू राज्य को दूसरे हिन्दू राज्य ने नष्ट किया है और एक मुसलिम राज्य ने दूसरे मुसलिम राज्य को। एक हिन्दू राज्य ने एक मुसलिम राज्य की रक्षा की है तो एक मुसलिम राज्य ने हिन्दू राज्य की। इसलिए धर्म के नाम पर चिर काल के लिए शत्रु बने रहना उचित नहीं है। मुसलमानों का हित भी अखण्ड भारत में ही है। मैं अपने नाटकों में भारत की एकता और अखंडता की आवश्यकता पर ज़ोर देना चाहता हूँ।

प्रचार और कला की सीमा को मैं पहचानता हूँ। यदि साहित्यिक श्रेष्ठ विचार नहीं देता—केवल मनोरंजन की भूख मिटाता है तो उसकी सेवाओं का अधिक मूल्य नहीं है। साहित्यिक की लेखनी की रेखाओं से युग का निर्माण होता है। साहित्य द्वारा समाज के संस्कार बनते हैं। ललित-साहित्य का संस्कृति के निर्माण में बड़ा हाथ है। समाज की विषमताएं ही तो उनके लिए साहित्य का मसाला देती हैं। ललित साहित्य के द्वारा समाज की जटिल समस्याओं पर प्रकाश पड़ना चाहिए। किंतु इसका यह अर्थ नहीं कि नाटक, कहानियाँ और उपन्यास नीरस उपदेश बनकर रह जायं। जो पात्र जो भी क्रिया-कलाप अथवा वार्तालाप करता है—वह उसके जीवन का अंग होना चाहिए। जहाँ तक मुझ से बना है, मैंने जो विचार दिये हैं उन्हें कहानी पर बोझ नहीं बनने दिया है। मैं समझता हूँ यही कला है।

ज्यों-ज्यों मेरे नाटकों का प्रचार बढ़ा है त्यों-त्यों उनमें न्यूनताएं निकालने की ओर भी कुछ समालोचकों का ध्यान गया है। उनके अनेक आक्षेपों के उत्तर मेरे पास हैं; किंतु मैं यहाँ चुप रहना ही पसन्द करता हूँ। हाँ, इन आलोचनाओं में जहाँ भी सचाई जान पड़ी है मेरे हृदय ने

उसे स्वीकार किया है और अगली रचनाओं में उनकी सूचनाओं का उपयोग किया है।

हमारे साहित्य-सृजन करने वालों और आलोचकों में आजकल 'टेकनीक' की बड़ी धूम है। जहाँ तक नाटक का सम्बन्ध है, हिन्दी में इसकी 'टेकनीक' के जानकार थोड़े हैं। जो जानकारी है वह पुस्तकों से उधार ली हुई। नाटक को साहित्य की वस्तु बनाए रखने के साथ ही 'रंग-मंच' के अनुकूल भी बनाना सरल कार्य नहीं है। यदि 'रंग-मंच' का ध्यान रखा जाय—केवल पढ़ने की चीज़ लिखी जाय—तो लेखक प्रत्येक दृश्य को खूब चुस्त रख सकता है। 'रंग-मंच' का ध्यान रखने पर अनेक बंधन लग जाते हैं। उदाहरण के लिए एक राजमहल, घर के भीतर, अथवा ऐसे ही किसी दृश्य, जिसमें काफ़ी सजावट करनी पड़ती है, के पश्चात् फिर वैसा ही दृश्य नहीं लाया जा सकता। एक एक चीज़ को हटाकर दूसरी रखने के लिए समय चाहिए। इसीलिए उसके बाद ऐसा दृश्य आना चाहिए जिसमें कोई सजावट न हो। अनेक बार 'रंग-मंच' की सुविधा के लिए ही कुछ दृश्य घटाने-बढ़ाने पड़ते हैं। हमारे आलोचक 'टेकनीक' का ज्ञान न रखने के कारण नाटककार में शिथिलता का दोष निकालते हैं।

जो नाटक 'रंग-मंच' को ध्यान में रखकर लिखा गया है, उनका पूर्ण सौंदर्य 'रंग-मंच' पर ही देखा जा सकता है—या वह व्यक्ति देख सकता है जो उसे पढ़ते समय 'रंग-मंच' की कल्पना अपने मस्तिष्क में रखता है। हिन्दी भाषा के अनेक भव्य नाटक 'रंग-मंच' पर आकर दर्शकों को आकर्षित न कर सके। मुझे इस बात का संतोष है कि मेरे नाटकों को रंगमंच पर असफलता प्राप्त नहीं हुई।

अनेक नाटक-लेखक ऐसे हैं जो 'रंगमंच' के अनुकूल नाटक लिख सकने की अपनी असमर्थता यह कहकर छिपाते हैं कि वे फिल्म

(चित्रपट) की 'टेकनीक' के अनुसार लिख रहे हैं। अब ज़माना बदल गया है। 'रंगमंच' की जगह 'सिनेमा-हाउस' ने ले ली है। ऐसा कहने वालों के नाटकों को जब हम पढ़ते हैं तो वे न तो 'रंगमंच' की टेकनीक के अनुकूल मिलते हैं, न फिल्म के। कोई दृश्य 'रंगमंच' के उपयुक्त है, तो कोई 'चित्रपट' के—और कोई दोनों के अनुपयुक्त। 'चित्रपट' की कला सर्वथा भिन्न है—इसके लिए लिखे हुए कथानक साहित्य की वस्तु नहीं बन सकते। कथानक इतने टुकड़ों में बँट जाता है—और कथोपकथन के भी छोटे-छोटे इतने अंश हो जाते हैं कि उनके पढ़ने में विशेष आनंद नहीं मिलता। प्रत्येक कथन किसी अभिनेता के कार्य से जुड़ा हुआ होता है—जब तक वह कार्य सामने नहीं है कथन बिना हवा का गुब्बारा होता है। 'चित्र-पट' की टेकनीक को नाटक में लाने का मोह हमारे लेखकों को छोड़ना चाहिए। यह ठीक है कि उसमें लेखक को नदी, पहाड़, महल, आसमान, समुद्र, बड़े-बड़े जहाज़, हवाई जहाज़, मोटरें सभी कुछ ले आने की सहूलियत मिल जाती है—लेकिन उसकी रचना 'चित्र-पट' पर इसलिए नहीं आ पाती कि उसे 'चित्र-पट' के अनुकूल बनाने के लिए निर्माताओं को दुबारा सिर खपाना पड़ता है और रंगमंच पर इसलिए नहीं आती कि वह उसके सर्वथा अनुपयुक्त होती है।

रंगमंच के अनुकूल लिखे हुए नाटक 'चित्र-पट' के अनुकूल बनाये जा सकते हैं। उसके लिए लेखक और निर्माता दोनों को थोड़ा श्रम करना पड़ता है। यह आवश्यक नहीं कि नाटक में दिये हुए दृश्यों को ज्यों-का-त्यों रखने का प्रयत्न किया जाय। उन दृश्यों को तस्वीरों के रूप में परिवर्तित करना है—और जहाँ पर अधिक सुन्दर नज़ारे दिखाए जाने चाहिएं।

उदाहरण के लिए इस नाटक का दूसरा दृश्य लीजिये। एक धीमर झील के किनारे बैठा गा रहा है—'है छोटी-सी मेरी नैया छोटी-सी

पतवार'। 'रङ्गमंच' पर हम झील में नाव खेते हुए उसे नहीं दिखा सकते। लेकिन 'चित्र-पट' में तो विस्तृत झील की लहरों में उसे नाव चलाते हुए दिखा सकते हैं। इसी तरह जब यह युवक गा रहा है तब राजकुमारी और रमा प्रवेश करती हैं। उन्हें भी एक बड़े बजरे पर आती हुई दिखा सकते हैं। जब युवक गाता है 'रानी जी का बजरा जिसका है रेशम का पाल' उसी समय राजकुमारी का बजरा दिखाया जाय तो दर्शकों पर अनोखा प्रभाव पड़ सकता है। हमारे फिल्म-निर्माता श्रेष्ठ कलाकारों द्वारा लिखे हुए नाटकों को 'चित्र-पट' पर नहीं लाते—कहते हैं इनमें फ़िल्मों के लिए कुछ नहीं है—वे अपना दिमाग़ यह देखने में खर्च नहीं करते कि इनके पीछे फ़िल्मों का कितना मसाला छिपा हुआ है। वे लेखक को आज्ञा दें तो वह उसे 'चित्र-पट' के अनुकूल रूप दे सकता है। 'रंगमंच' की टेकनीक के अनुसार लिखी चीज़ को 'फ़िल्म' की टेकनीक की कसौटी पर नहीं कसा जा सकता। 'फ़िल्म' के लिए जो सम्भावनाएं उसमें हैं उन्हें ही चतुर निर्माता को देखना चाहिए। 'विष-पान' की कहानी में 'चित्र-पट' के लिए जितना मसाला है, उतना बहुत थोड़े नाटकों में मिलेगा।

इस युग के कलाकार चाहते हैं कि नाटकों में गीत न दिये जायं। यदि 'रंगमंच' या 'सवाक् चित्र-पट' का ध्यान न हो, तो नाटकों से गीतों को निर्वासित किया जा सकता है। रस-सृष्टि में सङ्गीत बहुत सहायक होता है। आलोचक कहते हैं कि वास्तविक जीवन में गाने वाले पात्र नहीं मिलते। पात्रों से गीत गवाना अस्वाभाविक बात है। यह ठीक है कि नाटक का प्रत्येक पात्र गायक नहीं हो सकता, न प्रत्येक स्थान गीतों के लिए उपयुक्त होता है। फिर भी नाटक में दो-एक पात्र ऐसे रखे जा सकते हैं जिनका गाना कहानी की स्वाभाविकता को नष्ट न करता हो। गीत कथानक के अनुकूल हों—और जो रस—जो वाता-

वरण, जो प्रभाव लेखक उत्पन्न करना चाहता है उसको गहरा करने वाले हों। मेरे नाटकों के गीत कथानक के अङ्ग हैं।

अन्त में फिर मैं अपने पाठकों के सामने यह बात रखना चाहता हूँ कि मेरी व्यक्तिगत परिस्थितियाँ मेरे और उनके बीच में व्यवधान बनी हुई हैं। साहित्यिक का जीवन कितनी बड़ी कष्ट-साध्य साधना है—यह वही जानता है जिसने वह जीवन बिताया है। देश को सद्विचार चाहिए—मानसिक स्वास्थ्य चाहिए—आत्मिक भोजन चाहिए—किंतु जिस व्यक्ति से यह सेवा लेनी है उसकी कुछ आवश्यकताएं भी हैं, इस ओर कौन सोचता है? यदि कोई वास्तविक साहित्य देना चाहता है तो उसे आठों पहर अध्ययन, निरीक्षण और लेखन में डूबा रहना आवश्यक है। जीविका के लिए कुछ और धन्धा करे और थके हुए शरीर और मस्तिष्क से अधूरे अध्ययन-निरीक्षण के आधार पर साहित्य दे, तो उसमें पाठकों को क्या मिलेगा। जो अपना खून पीकर साहित्य की सेवा कर रहे हैं—उनमें से कुछ को यश भी मिल जाता है—किन्तु यश से भौतिक शरीर अपनी शक्ति स्थिर नहीं रख सकता। जिस कार्य के लिए वह संसार में आया है उसे पूरे मन से वह नहीं कर पाता।

लोग मुझे इतने नाटक और कविता-पुस्तकों के रचयिता के रूप में देखकर समझते हों कि मैंने साहित्य की बहुत सेवा की है, किन्तु अपनी बेचैनी और बेबसी को तो मैं ही समझता हूँ। हमारा हिंदी-साहित्य उन्नति कर रहा है, इसमें सन्देह नहीं, लेकिन अभी बहुत-कुछ करना बाकी है। एक-एक विषय के अध्ययन और लेखन में सम्पूर्ण जीवन लगा देने की आवश्यकता है। लेखक सभी ओर हाथ-पैर दौड़ाए इसकी अपेक्षा यह अच्छा है कि एक विषय का विशेषज्ञ बने। मैंने नाटक-क्षेत्र को अपनाने का निश्चय किया है। ऐतिहासिक नाटकों की ओर मेरी विशेष रुचि है। मेरे देश का सम्पूर्ण इतिहास ग़लत तरीके से उपस्थित

किया गया है। मैं उस पर नया प्रकाश डालना चाहता हूँ। जो कुछ कर पा रहा हूँ—वह बहुत थोड़ा है। इतिहास का वह भाग, जिस पर अधिक परिश्रम करने की आवश्यकता है मैं नहीं छू पा रहा। अभी मेरे सामने एक महा समुद्र पड़ा है जो बहुमूल्य रत्नों से भरा हुआ है। क्या कभी मैं अपनी सम्पूर्ण शक्ति और समय इन रत्नों को प्रकाश में लाने में लगा सकूँगा, क्या समय कभी मेरी आत्मा की पुकार सुनेगा।

—हरिकृष्ण 'प्रेमी'

पात्र-सूची

पुरुष

महाराणा	··· मेवाड़ के महाराणा।
महाराजा मानसिंह	··· मारवाड़ (जोधपुर) के महाराज।
महाराजा जगतसिंह	··· अम्बर (जयपुर) के महाराजा।
अजीतसिंह	··· मेवाड़ के चूड़ावत सरदार।
संग्रामसिंह	··· मेवाड़ के शक्तावत सरदार।
दौलतसिंह	··· मेवाड़ के सिसौदिया सरदार।
जवानदास	··· महाराणा के धाभाई (दासी-पुत्र)।
अमीर खाँ	··· पठान सेनापति।
कलुआ	··· एक धीमर युवक।

राजपूत सरदार, पठान सैनिक, सेवक आदि।

स्त्री

महारानी	··· मेवाड़ की महारानी।
कृष्णा	··· मेवाड़ की राजकुमारी।
रमा	··· दौलतसिंह की पुत्री।
राधा	··· एक दासी।
केसर बाई	··· एक वेश्या-पुत्री।

——

विष-पान

पहला अंक

पहला दृश्य

समय—प्रभात

[राजकुमारी कृष्णा वाटिका में घूम रही है । उसके एक हाथ में चंगेरी है, जिसमें भाँति-भाँति के फूल भरे हुए हैं। उसके दूसरे हाथ में एक गुलाब का फूल है, जिसे वह बार-बार अपने गुलाबी गालों से लगाती है। राजकुमारी की आयु १६-१७ के लगभग है । उसका रूप अप्सराओं को भी लज्जित करने वाला है। अङ्ग-अङ्ग में यौवन की बहार है, किंतु उसका मुख-कमल एक सात्विकता, एक सरल शालीनता लिये हुए, उसकी आँखें आकर्षण के साथ लज्जा लिये हुए हैं। सुन्दर, सुकुमार और कंचन-वर्णी शरीर पर आभूषणों का अधिक भार नहीं है —जो दो-चार हैं उनसे उसके रूप को चार चाँद लग गए हैं। राजकुमारी के बाल खुले हुए हैं मानों अभी स्नान कर वाटिका से फूल लेने आई हो।]

कृष्णा—(गीत)

मैं उपवन की नवल कली ।
अभी-अभी हैं आँखें खोलीं,
टूट पड़ी अलियों की टोली,
गूज उठी उनकी मृदु बोली,
मेरे मन को लगी भली ।
मैं उपवन की नवल कली।

अरुण किरण ने हृदय खिलाया,
मलय-समीरण ने हुलसाया,
नव लतिका ने मुझे भुलाया,
सुख-सपनों में सदा पली।
मैं उपवन की नवल कली।
मुझे गोद में लेकर डाली,
हुई स्वर्ग-सुख में मतवाली,
चलनी पड़े न मुझको, माली!
जग की ज्वाला-भरी गली।
मैं उपवन की नवल कली।

[रमा का प्रवेश। रमा कृष्णा की समवयस्का है, किंतु उसकी आकृति में दृढ़ता और स्फूर्ति है। चेहरे पर गम्भीरता है। उसके हाथ में एक थाल है, जिस में पूजा का सामान है। उसकी माँग का सिंदूर और पैरों के बिछुए बता रहे हैं कि वह विवाहिता है। राजकुमारी का ध्यान उसकी तरफ नहीं जाता।]

रमा—अजी उपवन की नवल कली!

कृष्णा—ओहो, रमा बहन है! आओ न कैसा सुन्दर समय है!

रमा—समय तो बहुत सुन्दर है, कृष्णा, किंतु महारानी जी तुम्हें बुला रही हैं।

कृष्णा—कहाँ ?

रमा—राज-महल में !

कृष्णा—राज-महल में ? क्या मैं सदा उसी पिंजरे में बन्द रहने के लिए हूँ ?

रमा—पिंजरा ! पगली सुन्दर पंछी को पिंजरे में ही बन्द करके रखा जाता है। तुमने भी तो मैना को बंदी बना रखा है।

कृष्णा—मैं आज ही उसे मुक्त कर दूँगी।

रमा—फिर हम उसके मधुर स्वरों का रस-पान कैसे कर पायंगे ?

कृष्णा—स्वार्थ के लिए हम उसकी स्वाधानता क्यों छीनें ?

रमा—हम उसे खाना-दाना जो देते हैं।

कृष्णा—किन्तु उसे तो अपने श्रम से अर्जित भोजन भाता है।

रमा—अच्छा, यह विवाद छोड़ो और रावला में चलो। महारानी जी विशेष कार्य से बुला रही हैं। उन्हीं की आज्ञा से यह पूजा की सामग्री मैं लाई हूँ।

कृष्णा—उनका विशेष कार्य मैं समझती हूँ। उनका मुझ पर इतना अधिक मोह है कि एक क्षण के लिए भी वे मुझे आँखों की ओट नहीं होने देना चाहतीं। वे समझती हैं जैसे मैं अभी नन्हीं बालिका हूँ। जैसे कोई मुझे उठा ले जायगा। वाटिका में फूल लेने आती हूँ तो कहती हैं—माली-मालिन किस लिए हैं। गुलाब के क्रूर काँटे तेरे कोमल हाथों में गड़ जायंगे। किसी चमेली की लतिका के नीचे बैठा हुआ साँप तुझे डस लेगा। न जाने कैसी-कैसी आशंकाएँ वह करती रहती हैं। देख तो रमा, क्या वास्तव में मैं नादान बालिका हूँ।

रमा—वह माँ हैं, राजकुमारी ! जब तुम माँ बनोगी, तभी माँ के हृदय की ममता का रहस्य समझोगी !

कृष्णा—दुत, मैं माँ नहीं बनना चाहती । मैं तो सदा बेटी रहना चाहती हूँ।

रमा—महारानी जी ठीक ही कहती हैं कि तुम नादान बालिका हो। ग़रीब-से-ग़रीब घर की बेटी भी कभी बेटी नहीं रह सकती—उसे पहले पत्नी और फिर माँ बनना पड़ता है। नारी के जीवन की सफलता इसी में है।

कृष्णा—अभी विवाह हुए दो दिन भी नहीं हुए कि विवाह के गुण गाने लगी हो। काना चाहता है कि सभी काने हो जायं और इसी लिए कहता है कि काने को भगवान् दर्शन देते हैं। समझी रमा, मैं यह भेड़-चाल नहीं चलना चाहती।

[महारानी का प्रवेश । महारानी की आयु यद्यपि ४० वर्ष की है, किन्तु उनके शरीर की लुनाई ज़रा भी कम नहीं हुई। स्वस्थ, सुडौल और सुन्दर आकृति है । आँखें बड़ी बड़ी और तेजस्वी हैं । नाक तीखी और ओठ पतले, वेशभूषा राजसी होते हुए भी एक सादगी लिये हुए हैं । उन्हें देखकर मनुष्य के हृदय में अपने-आप आदर का भाव उत्पन्न होता है।]

महारानी—रमा, तू भी यहीं रम गई !

रमा—मैं क्या करूँ, यह कृष्णा.....

कृष्णा—(रमा की बात काटकर) देखो न माँ, कैसा सुन्दर समय है—ऐसे समय में वाटिका की सैर.....

महारानी—(कृष्णा की बात काटकर) बस रात-दिन वाटिका की सैर करना या झील में नाव खेना ही तुझे भाता है, महलों में रहना तो तुझे अच्छा ही नहीं लगता।

कृष्णा—सचमुच ही माँ, मेरा जी चाहता है कि कोयल बनकर उस आम की सबसे ऊँची फुनगी पर बैठकर मधुर गीतों से सारे उपवन को गुँजा दूँ। पक्षी बनकर ऊपर उस नीले आकाश में उड़ती ही चली जाऊँ। सागर की लहर बनकर नाचूँ। सूर्य की किरण बनकर फूलों का मुँह चूमूँ। मैं सर्वथा स्वतन्त्र और स्वच्छन्द रहना चाहती हूँ।

महारानी—बेटी, नारी के हृदय का स्नेह उसका सबसे बड़ा बन्धन है। उसने स्नेह की जञ्जीरों से अपने-आपको सब तरफ़ से जकड़ रखा है। यह बन्धन ही उसका सबसे बड़ा सुख है।

कृष्णा—यह तुम क्या कहती हो, माँ. बन्धन ही सबसे बड़ा सुख है?

महारानी—हाँ, मैं ठीक कहती हूँ, बेटी। यही बन्धन संसार को जीवित रखता है। यदि प्रकृति का प्रत्येक अणु स्वच्छन्द होना चाहे तो परमात्मा का सुन्दर खेल एक क्षण भी न चल सके, बेटी! इसीलिए नियम हैं, इसीलिए परिवार है, इसीलिए समाज है, इसीलिए राज है और इसीलिए सभ्यता है।

कृष्णा—फिर भी.....

महारानी—बातें तो फिर भी हो सकेंगी। आज, अक्षय तृतिया है। जाकर देवी की पूजा करो।

कृष्णा—पूजा! क्या मिलेगा पूजा से माँ?

रमा—अच्छा वर और चिर-सुहाग! चलो!

[रमा मुसकराती है हाथ पकड़कर कृष्णा को खींच ले जाती है। महारानी भी पीछे-पीछे जाती हैं।]

[पट-परिवर्तन]

दूसरा दृश्य

समय—संध्या

[दौलतसिंह और संग्रामसिंह एक देहाती पगडंडी पर जा रहे हैं। दोनों राजपूती ढङ्ग का साफा बाँधे हुए हैं। कमर में तलवार, कन्धे पर पीठ की ओर ढाल और हाथ में बल्लम हैं। बड़ी-बड़ी आँखें, रौबदार दाढ़ी-मूछें और सुगठित शरीर है।]

संग्रामसिंह—बस हमें यहीं प्रतीक्षा करनी चाहिए। अमीरखाँ से यहीं मिलने का निश्चय हुआ है।

दौलतसिंह—संग्रामसिंह जी मेरा मन कहता है कि हमें लौट चलना चाहिए।

संग्राम—किसलिए, दौलतसिंह जी ?

दौलत—तुम जानते हो संग्रामसिंह जी मेरे परदादा मेवाड़ के राज-सिंहासन पर आसीन थे। मेवाड़ की राजगद्दी पर अधिकार पाने का मोह मुझे भी हो सकता है। जिस समय भीमसिंह जी गद्दी पर बैठे वह बालक थे। उस समय शासनाधिकार हस्तगत करने और उसे सम्हालने की शक्ति और बुद्धि मुझमें थी। बाप्पा रावल का पवित्र और तेजस्वी रक्त मेरी नसों में भी प्रवाहित होता है। लेकिन गृह-युद्ध की ज्वाला प्रज्वलित करना मैंने उचित नहीं समझा।

संग्राम—निश्चय ही आपका विवेक श्लाघ्य है!

दौलत—और संग्रामसिंह जी आपकी भी नसों में वहीरक्त है जो मेवाड़ के महाराणा की नसों में। प्रातःस्मरणीय स्वर्गीय

महाराणा प्रताप के भाई वीरवर शक्तिसिंह की वीरता, पराक्रम और साहस को क्या कभी मेवाड़ भूल सकता है ? उनके वंशज सदा ही हरावल में रहने के लिए चूड़ावतों से होड़ लगाते रहे हैं।

संग्राम—पौरुष की उन कहानियों को सुनकर शक्तावतों की छाती दूनी हो जाती है।

दौलत—लेकिन जिस मेवाड़ की चप्पा-चप्पा भूमि हमारे पूर्व पुरुषों के रक्त से सिंची हुई है, हम उसके मान और बल को क्षीण कर रहे हैं। मेवाड़ देश की और मेवाड़ राज-परिवार की दशा देखकर क्या तुम्हें दुःख नहीं होता, भाई !

संग्राम—होता क्यों नहीं है, दौलतसिंह जी मेवाड़ भूमि हमें प्राणों से अधिक प्रिय है। मेवाड़ का राज-परिवार हमारी आँखों का उजियारा है।

दौलतसिंह—फिर क्यों बाहरी शक्तियों को हमारे पारस्परिक विवादों में निमन्त्रित किया जाय ? हमें इस तरह आपस में लड़ना ही नहीं चाहिए। हम लोग राजपूत है—हमारी तलवार सदा रक्त की प्यासी रहती है, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि हम अपने ही भाइयों का ख़ून बहायें।

संग्रामसिंह—जिन शक्तावतों ने स्वर्गीय महाराणा अमरसिंह जी के दाहिने हाथ बनकर बादशाह जहाँगीर की विराट् सेना का प्रथम प्रहार स्वयं सहा और आगे बढ़कर शत्रु पर प्रहार किया, जिन्होंने स्वर्गीय महाराणा राजसिंह के साथ सम्राट् औरंगज़ेब के दांत खट्टे किए, जो सदा मेवाड़ की ढाल बनकर रहे, जिन्होंने एक-एक युद्ध में अपनी शाखा के हज़ारों मस्तक एक साथ समर्पित किए, आज मेवाड़ के राज-दरबार में उनके उपयुक्त कोई मान का स्थान नहीं है। दौलतसिंह जी ! चूड़ावतों ने महाराणा जी

पर और मेवाड़ के राज्य-शासन पर अपना एकाधिकार स्थापित कर रखा है। क्या आप इसे न्याय समझते हैं ?

दौलतसिंह—मैं इसे न्याय नहीं समझता, संग्रामसिंह जी ! लेकिन मेरे भाई, ताली दोनों हाथों से बजती है। जब शक्तावतों का भाग्य उत्कर्ष पर आता है, तब चूड़ावतों को मिट्टी में मिला देने का यत्न किया जाता है। यह नहीं जानते कि हम अपने ही अंगों को काटकर फेंक रहे हैं। एक दौड़कर होलकर से सहायता माँगता है, दूसरा सिंधिया के पास जाता है, और तीसरा अमीरखाँ को निमंत्रित करता है। ये सहायक आते हैं और मेवाड़ की भूमि और धन पर अपना अधिकार स्थापित करते हैं। भैया, इन बंदर-बाँट करने वाले पंचों से बचो। ये किसी के सगे नहीं हैं—ये केवल अपना उल्लू सीधा करना चाहते हैं।

संग्राम—तो क्या हम अपमान का घूँट चुपचाप पी लें। चूड़ावतों ने बाहर के सिंधी सैनिकों की सेना बनाकर हम लोगों पर जो अत्याचार किये हैं, हमें स्वत्वहीन बनाने का जो चक्र चलाया है, उसे क्या आप नहीं देखते ? ये वेतन-भोगी सैनिक हमारे देश की छाती पर निर्दयता से पैर रखते हुए घूमते हैं, हमारे देश का अन्न खाकर हमारा ही खून बहाते हैं ! बताइए, दौलतसिंह जी, इस परिस्थिति से निस्तार पाने का क्या उपाय है ?

दौलत—इसका यह उपाय नहीं कि हम एक और बाहरी शक्ति को यहाँ पैर जमाने दें। इसका एक मात्र उपाय यही है कि हम अपने भेद-भाव मानापमान, स्वत्व और स्वार्थ भूलकर अपने देश के लिए एक हो जायँ। यदि हमें रास्ते का भिखारी बनना

पड़े तो भी कोई चिंता न करें। यदि शक्तावतों की शाखा की शाखा नष्ट हो जायँ, फिर भी यदि देश की रक्षा हो सके तो तुम इसे अपना गौरव समझो। देश पारिवारिक-प्रतिष्ठा, जाति-गौरव और वंशाभिमान से कहीं बड़ी चीज है"। उसके लिए हमें स्वाभिमान की भी हत्या करनी पड़ेगी।

संग्राम—राजपूत स्वाभिमान को भूल जाय, यह बहुत कठिन कार्य है, दौलतसिंह जी!

दौलत—जो स्वाभिमान अपने देश के गले की फाँसी बनता हो, उसे भला ही देना चाहिए, संग्रामसिंह जी। स्वाभिमान मनुष्य का बहुत बड़ा बल है, किंतु कभी-कभी यह उसकी बहुत बड़ी कमजोरी भी बन जाता है। स्वर्गीय महाराणा प्रतापसिंह जी ने वीरवर स्वर्गीय शक्तिसिंह जी को देश से निर्वासन दिया था। क्रोध के आवेश में प्रतिशोध की भावना शक्तिसिंह को सम्राट अकबर के पास ले गई। किंतु अपने भाई को हल्दीघाटी के संग्राम में घायल स्थिति में घायल चेतक घोड़े पर जाते देखकर तथा उनकी जान लेने के लिए खुरासानी और मुलतानी सरदारों को पीछा करते देखकर, उनका भ्रातृ-प्रेम उनकी छाती फोड़कर उमड़ पड़ा। उन्होंने दोनों मुग़ल सरदारों को मौत के घाट उतार दिया। मृतक चेतक को सिरहाने लगाए हुए पड़े महाराणा के चरण छुए और उन्हें अपना घोड़ा प्रदान किया। अपना अपमान भूल कर वे महाराणा के दाहिने हाथ बने।

संग्राम—और महाराणा प्रतापसिंह ने भी उन्हें खुले दिल से गले लगाया।

दौलतसिंह—तुम भी चूड़ावतों को तलवार से नहीं प्रेम और

त्याग से जीतो। चूड़ावतों और शक्तावतों ने कंधे से कंधा भिड़ा कर देश के शत्रुओं से लोहा लिया है। आज भी वे कंधे से कंधा भिड़ा कर खड़े हो जायं तो किसकी शक्ति है जो मेवाड़ की ओर लालच भरी नज़र से देखे।

संग्राम—यदि हमें सम्मानपूर्वक जीने का अधिकार·····।

दौलत—मिलेगा, संग्रामसिंह जी! मिलेगा। ज़रा महाराणा जी की स्थिति को भी देखो। वह शक्ति, जिसे 'हिन्दुओं का सूर्य' कहा जाता रहा है, जिसने सम्राट् अकबर के विपुल सैन्य-दल के आगे सिर नहीं झुकाया, आज कितनी क्षीण हो चुकी है। पारस्परिक संघर्ष ने लाखों नहीं बल्कि करोड़ों रुपया बाहरी शक्तियों के अर्पण करा दिया है। इस बार तो महाराणा को रावलों की महिलाओं के आभूषण भी बेचने पड़े हैं। राजकुमारी कृष्णा के विवाह के लिए धन कहाँ से आयगा, इस चिंता ने उन्हें व्यथित कर रखा है। देश उजाड़ है—सामंतों के उत्पात ने कृषि, वाणिज्य, राज्य-प्रबन्ध सब कुछ चौपट कर रखा है। राज्य-कोष में धन कहाँ से आय?

संग्राम—आप ठीक कहते है, दौलतसिंह जी।

दौलत—राजकुमारी सभी सिसौदियों की आँखों की पुतली है। कुछ भी हो हमें बाप्पा रावल की गद्दी का मान रखना ही पड़ेगा। यदि कृष्णा का विवाह राज-वंश की प्रतिष्ठा के अनुकूल न हुआ तो हमारे लिए यह डूब मरने की बात होगी। वह आपकी भी बेटी है, संग्रामसिंह जी!

संग्राम—उसके लिए आप मेरे शरीर का चमड़ा भी बेच

सकते हैं दौलतसिंह जी ! आप जो कहें मैं वही करूँगा।

दौलत—तो चलो, यहाँ से चलो बाहरी शक्तियों को विदित होने दो कि मेवाड़ियों में अभी बुद्धिमत्ता बाकी है।

[दोनों का प्रस्थान]

पट-परिवर्तन]

तीसरा दृश्य

समय—रात्रि का प्रथम प्रहर

स्थान—मेवाड़ की महारानी का कमरा

[दीवारों पर धार्मिक और वीर पुरुषों के चित्र टँगे हुए हैं। फर्श की सजावट राजसी होते हुए भी सादगी और सुरुचि लिये हुए है। बीच में एक बड़ा मसनद है। उसमें दोनों ओर और भी कई मसनद रखे हुए हैं। बीच के मसनद के सहारे महारानी आसीन हैं। उनके पास ही एक मसनद के सहारे रमा है।]

महारानी—रमा, तेरे पिता जी तो घर पर नहीं होंगे।

रमा—नहीं, महारानी जी वह घर पर ही हैं।

महारानी—तू तो कहती थी कि वह संग्रामसिंह जी के साथ बाहर गये हुए हैं, शीघ्र नहीं लौटेंगे।

रमा—लेकिन, वह लौट आये हैं। कह रहे थे मेवाड़ एक भयङ्कर राक्षस के पंजे में पड़ने से बच गया।

महारानी—किस राक्षस के पंजे से ?

रमा—यह उन्होंने नहीं बताया। हाँ, वह कहते थे कि यदि सब सरदारों में, विशेष रूप से चूड़ावतों और शक्तावतों में, जिनका सम्बन्ध राज-रक्त से है, मेल हो जाय तो अब भी हमारे देश के सुदिन आ सकते हैं।

महारानी—लेकिन 'न नौ मन तेल होगा न राधा नाचेगी'। राजपूत बिना लड़े-भिड़े रह सकते हैं कहीं ? जब कोई नहीं मिलता तो आपस में ही तलवारें खिंचती हैं।

रमा—हाँ, यह हमारी जाति में बड़ा दुर्गुण है।

महारानी—अजीतसिंह जी और जयानदास जी अभी तक नहीं आये। कृष्णा के विवाह के सम्बन्ध में उनसे परामर्श करना है।

रमा—मुझे आपकी बात काटने का कोई अधिकार नहीं है, महारानी जी! फिर भी कहना ही पड़ता है कि घर और राज्य के कार्यों में आप और महाराणा जी स्वतन्त्र रूप से निर्णय कर सकते तो अच्छा होता।

महारानी—यह मैं समझती हूँ, बेटी। लेकिन दबी बिल्ली चूहों से कान कटाती है। परिस्थिति का चक्र बड़े-बड़ों को पीस देता है। तुझे तो पता है पिछले दिनों बाई जी* के विवाह के लिए सिंधिया से ऋण लेना पड़ा था—और उसी वर्ष चूड़ावत सरदार ने अपनी बेटी के विवाह में तीन लाख रुपए खर्च किये थे। आज हमारी और उनकी स्थिति में कितना अन्तर पड़ गया है?

रमा—मैं कहती हूँ इन्हें और क्यों मुँह लगाया जाय?

महारानी—अभी इनसे छुटकारा पाने का कोई मार्ग भी तो नहीं है। तू जानती है चूड़ावत सरदार अजीतसिंह ने मेवाड़ के धन से एक बड़ी सिन्धी सेना पाल रखी है और उसकी बागडोर अपने हाथ में ले रखी है। दूसरे सरदारों को वे एक-एक कर समाप्त करते जा रहे हैं और हम भी आज उनकी कृपा पर आश्रित हैं। वह देखो वे आ रहे हैं।

---

*महाराणा की बहन

[अजीतसिंह और जवानदास का प्रवेश]

अजीत—महारानी जी के चरणों में प्रणाम !

जवानदास—महारानी जी को नमस्कार।

महारानी—आइए, आइए। बड़ी प्रतीक्षा कराई।

अजीत—विलंब के लिए मैं क्षमा प्रार्थी हूँ।

[दोनों एक मसनद के सहारे पास-पास बैठ जाते हैं।]

महारानी—रमा, काका जी के लिए अमल-पानक भेजो।

[रमा का प्रस्थान]

महारानी—आपकी इच्छानुसार जोधपुर के महाराज अभयसिंह जी के लिए कृष्णा की सगाई का टीका भेजा जा चुका है।

जवानदास—इससे अच्छा और क्या हो सकता था ? हमारी कृष्णा राजस्थान के आकाश का चाँद है। वह शंकर के समान शक्तिशाली व्यक्ति के भाल की ही शोभा हो सकती है।

अजीत—सिसौदिया राजवंश क्षत्रिय-कुल का अभिमान है, तिस पर हमारी कृष्णा रूप और गुण की खान है। राजरानी का पद भी उसके लिए छोटा है।

महारानी—राजकुमारी पर आप लोगों का स्नेह सराहनीय है। आप सब लोगों की यही इच्छा है कि उसका विवाह धूम-धाम से हो—किन्तु हमारी वर्तमान स्थिति में यह कैसे सम्भव है। बड़े नाम की फाँसी गले में पड़ी हुई है। उसकी लाज अब

कैसे रहेगी, चूड़ावत सरदार अजीतसिंह जी ?

[महाराणा आते हैं। सब खड़े हो जाते हैं। महाराणा का शरीर बल-शाली है—आँखें बड़ी किंतु कुछ उदासी लिये हुए। चौड़े कपाल पर कुछ चिंता की रेखाएं हैं। महाराणा महारानी के पास ही मसनद के सहारे बैठ जाते हैं। शेष लोग भी बैठते हैं। एक दासी एक स्वर्ण-पात्र में अमल और एक तश्तरी में पान रख जाती है।]

महाराणा—महारानी जी के दरबार में किसका भाग्य-विधान रचा जा रहा है।

महारानी—कुछ नहीं कृष्णा के विवाह के विषय में कुछ विचार कर रहे हैं—जब आप कुछ नहीं सोचते तो हमें ही सोचना पड़ेगा।

महाराणा—जब मैं एक बार सोचना प्रारम्भ करूँगा तो इस सोचने का अंत नहीं आयगा, महारानी जी ! इसीलिए मैं अपने मस्तिष्क को कष्ट नहीं देना चाहता।

[महाराणा अमल-पान करते हैं तथा अजीतसिंह और जवानदास की ओर पात्र बढ़ाते हैं। वे दोनों भी अमल ग्रहण करते व पान खाते हैं।]

महाराणा—संसार का सबसे उत्तम पदार्थ है यह अमल।

इसकी पिनक में घर-गृहस्थी, राज-दरबार सब-कुछ रुई के बादलों की तरह उड़ जाते हैं। मनुष्य कल्पना के पंखों पर चढ़कर आनन्द-लोक की सैर करने लगता है, जहाँ अप्सराओं के नूपुर बजने लगते हैं। यह दुनिया अन्धकार के पर्दे में छिप जाती है।

महारानी—सांसारिक समस्याओं की ओर से आँखें बंद कर लेने-भर से ही उनका अस्तित्व नष्ट नहीं हो सकता, महाराणा जी!

महाराणा—हः हः हः तुम भी खूब कहती हो, महारानी जी! इस संसार की तस्वीर इतनी विकृत हो गई है कि आँखें खोलकर उसे देखते नहीं बनता। आदमियों की आकृति में हिंसक पशु बस्तियों में घुस आए हैं। वे ही आज महाराजा, राजा, सेठ, साहूकार, जागीरदार, सरदार बने बैठे हैं।

अजीतसिंह—महाराणा जी, कृष्णा का विवाह सिर पर···

महाराणा—हाँ—हाँ, वह तो हो ही जायगा। आप लोग किस लिए हैं?

जवानदास—उसके प्रबन्ध में आपकी सम्मति·····

महाराणा—मेरी सम्मति! मेरी सम्मति से आप लोग कार्य करेंगे? नहीं, रहने दो मेरे भाई। मुझे कीचड़ में न घसीटो। महारानी जी, कृष्णा कहाँ है। मैं सोचता हूँ—जब वह चली जायगी—मेरा जीवन अधूरा रह जायगा। कौन मुझे विश्राम के पूर्व अपने गीतों की स्वर-लहरी में विलीन करके जगत् के ताप को शांत करेगा। जब तक वह है—मैं उसके सिवा किसी से बात नहीं करना चाहता। कहाँ है वह?

महारानी—अपने ही कमरे में। मीरा के विष-पान का चित्र बना रही है।

कैसे रहेगी, चूड़ावत सरदार अजीतसिंह जी ?

[महाराणा आते हैं। सब खड़े हो जाते हैं। महाराणा का शरीर बल-शाली है—आँखें बड़ी किंतु कुछ उदासी लिये हुए। चौड़े कपाल पर कुछ चिंता की रेखाएं हैं। महाराणा महारानी के पास ही मसनद के सहारे बैठ जाते हैं। शेष लोग भी बैठते हैं। एक दासी एक स्वर्ण-पात्र में अमल और एक तश्तरी में पान रख जाती है।]

महाराणा—महारानी जी के दरबार में किसका भाग्य-विधान रचा जा रहा है।

महारानी—कुछ नहीं कृष्णा के विवाह के विषय में कुछ विचार कर रहे हैं—जब आप कुछ नहीं सोचते तो हमें ही सोचना पड़ेगा।

महाराणा—जब मैं एक बार सोचना प्रारम्भ करूँगा तो इस सोचने का अंत नहीं आयगा, महारानी जी ! इसीलिए मैं अपने मस्तिष्क को कष्ट नहीं देना चाहता।

[महाराणा अमल-पान करते हैं तथा अजीतसिंह और जवानदास की ओर पात्र बढ़ाते हैं। वे दोनों भी अमल ग्रहण करते व पान खाते हैं।]

महाराणा—संसार का सबसे उत्तम पदार्थ है यह अमल।

महाराणा—यह दुनिया ही ऐसी हो गई है, महारानी जी ! यहाँ प्रत्येक भले आदमी को विष-पान करना पड़ता है । अच्छा, मैं जाता हूँ, कृष्णा के पास ! आवश्यक समझो तो, तुम भी आ जाना, महारानी जी !

[महाराणा उठकर जाते हैं । सभी खड़े हो जाते हैं ।]

अजीत—पता नहीं क्यों, अनेक बार महाराणा जी बहकी-बहकी बातें करने लग जाते हैं ।

जवान—राजा को वैराग्य उचित नहीं है ।

अजीत—बैठिए न, महारानी जी, हम अपनी चर्चा समाप्त कर लें ।

महारानी—नहीं अजीतसिंह, आज अब कुछ न होगा । मुझे महाराणा जी की बहुत चिंता हो रही है । मैं अभी उनके पास जाऊँगी । क्षमा कीजिए, आपको व्यर्थ कष्ट हुआ । कल फिर इसी समय आने की कृपा करें ।

[सबका प्रस्थान]

[पट-परिवर्तन]

चौथा दृश्य

समय—संध्या

स्थान—एक देहाती रास्ता

[मेवाड़ का राज-पुरोहित एक सेवक के साथ प्रवेश करता है।]

पुरोहित—भगवान् की माया देखते हो, बुधुआ ! जलती हुई बालू के मैदान में कहीं-कहीं ऐसे हरियाले स्थान भी होते हैं। मालूम होता है कि पास ही गाँव है। आज इसी गाँव में विश्राम होगा।

बुधुआ—बहुत अच्छा, पुरोहित जी !

पुरोहित—हम पेड़ के नीचे बैठकर प्रकृति की संध्या समय की शोभा देखेंगे। तुम तब तक घोड़ों को दाना-पानी दो।

[पुरोहित बैठ जाता है। सेवक जाता है।]

पुरोहित—मरु-भूमि में भी रस के स्रोत हैं, किंतु मेरा जीवन तो रेगिस्तान है, जिसमें दिगंत तक केवल शुष्कता, नीरसता, का विस्तार है। सारी आयु दूसरों का जीवन बनाने में समाप्त कर दी, किंतु आप सुधा-सरोवर खोजने चले तो मिली नमक की झील। आओ अफ़ीमदेवी, अब एक-मात्र तुम ही मेरे आनंद का केन्द्र हो।

[जेब से डिब्बी निकालकर अफीम खाता है। दो देहातिन बालाएं रामी और श्यामा रीते घड़े लिये आती हैं।]

रामी—कुएं पर कोई भला आदमी घोड़ों को पानी पिला रहा है।

श्यामा—तो हमें थोड़ी देर यहीं ठहरना चाहिए।

रामी—तूने सुना है, श्यामा, हमारी राजकुमारी कृष्णा का विवाह होने वाला है।

श्यामा—सचमुच, रामी, यह तो बड़ी खुशी की बात है।

रामी—हाँ, खुशी की खबर तो है ही। महाराणा जी, हमारे अन्नदाता हैं। पिता के समान हैं—और राजकुमारी—वह तो साक्षात् लक्ष्मी का अवतार हैं। उन्हें तो देखने से ही आत्मा को सुख मिलता है, लेकिन—(एक लम्बी साँस लेती है।)

[पुरोहित इनकी बातों की तरफ ध्यान देता है।]

श्यामा—लेकिन क्या ?

रामी—यही कि खुशी की बात भी ग़रीबों के गले की फाँसी हो जाती है। हम लोगों का मन राज-परिवार के सुख में शामिल होने को कितना लालायित रहता है, किन्तु हम ऐसा नहीं कर पाते।

श्यामा—क्यों, हमें रोकता कौन है ?

रामी—हमारा दुर्भाग्य, और कौन ? तू यहाँ नई नवेली है न—तुझे यहाँ का हाल क्या मालूम ? हमारे राज-परिवार के पिछले दिन नहीं रहे। तुझे क्या मालूम कि जब राज-परिवार में कोई उत्सव या संस्कार होता है तो हम ग़रीबों के सिर पर क्या बीतती है ?

श्यामा—खूब जलसे होते होंगे। बड़े-बड़े भोज होते होंगे। गाना-बजाना—नाचना—आनन्द-ही-आनन्द होता होगा।

रामी—हाँ, यह तो होता ही है।

श्यामा—तो जलमरी, इसे तू मुसीबत कहती है।

रामी—मुसीबत तो है ही। यह सब-कुछ होता किसके सिर पर है? हम ग़रीबों से दंड वसूल करके यह अतिरिक्त व्यय पूरा किया जाता है।

श्यामा—क्यों? क्या महाराणा जी के पास धन का टोटा है?

रामी—वह महाराणा हैं? हिंदुओं के सूर्य हैं। विवाहादि अवसरों पर लाखों रुपया व्यय न हो तो उनकी प्रतिष्ठा में फ़र्क आ जाता है। अपने निखरे हुए दिनों में ऊपरी ठाठ दिखाने की ओर लोगों की स्वभावतः रुचि बढ़ जाती है। थोथा चना बाजे घना। वंश का बड़प्पन दिखाने का इसके सिवाय और क्या मार्ग है कि ऐसे अवसरों पर खूब प्रदर्शन किया जाय। रुपया पानी की भाँति बहाया जाय।

श्यामा—तो ग़रीबों को तङ्ग क्यों करते हैं? मोटे-मोटे सेठ-साहूकारों, जागीरदारों और सरदारों से यह धन वसूल किया जाना चाहिए।

रामी—धन-संग्रह करने का कार्य तो इन्हीं मोटे-मोटे लोगों के हाथ में होता है, और ये अजगर स्वयं अपनी जेब से नाम-मात्र को देते हैं। अधिकांश ग़रीबों की गाढ़ी कमाई में से छीना जाता है। सच तो यह है कि हम लोगों को दोनों समय भर-पेट भोजन भी नसीब नहीं होता—तिस पर जब ऐसे दंड लग जाते हैं, तो हमारी आत्मा तिलमिला उठती है खुशी की बात भी मुसीबत का सन्देश बन जाती है? चलो, अब कुएं पर कोई नहीं है।

[दोनों का प्रस्थान। खून से लथ-पथ
दो सैनिकों का प्रवेश]

एक सैनिक—जान बची और लाखों पाए। भैया, हमने तो

ठान ली है कि सैनिक का पेशा छोड़ देंगे।

दूसरा सैनिक—भैंसे लड़ते हैं और बाड़ का चुरकुन होता है। राजा-महाराजा लड़ते हैं अपने मतलब के लिए और हम लोग पैसे लेकर अपने सिर कटाते हैं।

पहला सैनिक—देखो न, महाराजा अभयसिंह जी अपने काका, ताऊ, भतीजे सबको मौत के घाट उतार कर राजगद्दी के स्वामी बने।

[अभयसिंह का नाम सुनकर पुरोहित सैनिकों की बातों पर विशेष ध्यान देने लगता है।]

दूसरा सैनिक—बच रहे थे मानसिंह, सो उन पर भी सेना लेकर चढ़ दौड़े।

पहला सैनिक—लेकिन भगवान् का न्याय बड़ा बलवान है। उनके सारे सुख-सपने यहीं रह गए और उन्हें यहाँ से चले जाना पड़ा।

पुरोहित—(उठकर सैनिकों के पास आकर) क्या कह रहे थे जी महाराजा अभयसिंह·····

दूसरा सैनिक—तुम दाल-भात में मूसरचंद बनकर कौन आगए। जानते नहीं हो, हम सैनिक हैं, राजपूत हैं, राठौर हैं।

पुरोहित—आप सैनिक हैं, यह तो समझ में आता है, लेकिन यह कैसे जान पड़े कि आप राठौर हैं ?

पहला सैनिक—क्यों, क्या हमारी सूरत से नहीं जान सकते ?

पुरोहित—सूरत पर क्या जाति लिखी रहती है। रही तलवार

पकड़ने की बात सो तलवार तो बनिया-बामन भी पकड़ लेते हैं। वीरता किसी जाति के हिस्से में नहीं लिखी।

दूसरा सैनिक—हः हः हः कैसी भोली बातें करते हो। संस्कार भी कोई चीज़ है?

पुरोहित—अच्छा भाई, तुम सच्चे मैं झूठा। यह तो बताओ महाराजा अभयसिंह के विषय में आप क्या कह रहे थे?

पहला सैनिक—तुम तो भाई इस तरह कह रहे हो जैसे उनके विवाह का टीका चढ़ाने जा रहे हो!

पुरोहित—हाँ—हाँ यही तो बात है।

दूसरा सैनिक—हः हः हः विवाह का टीका! भले आदमी तुम उनके पास पहुँचोगे कैसे?

पुरोहित—वाह जी, हम सब जगह जा सकते हैं।

पहला सैनिक—हाँ-हाँ जा तो तुम सकोगे, लेकिन जाना नहीं चाहोगे।

पुरोहित—जाना क्यों नहीं चाहेंगे—स्वामी का काम करने के लिए हम सब जगह जाने को तैयार हैं।

दूसरा सैनिक—तुम्हारे कितने बाल-बच्चे हैं?

पुरोहित—पाँच।

पहला सैनिक—कोई जागीर-आगीर लगी हुई है क्या?

पुरोहित—महाराणा जी की कृपा से कोई कमी नहीं है।

दूसरा सैनिक—तो ठीक है। झुकाओ गर्दन, हम तुम्हें महाराजा अभयसिंह के पास पहुँचा दें। (तलवार उठाता है)

पहला सैनिक—पहले इसकी जाति तो पूछ लो?

पुरोहित—हम ब्राह्मण हैं। बहुत ऊँचे ब्राह्मण हैं।

दूसरा सैनिक—हाय, हाय, ब्रह्म-हत्या का पाप लगा जा रहा था। तो सुनो ब्राह्मण देवता—अगर महाराजा अभयसिंह जी को सगाई का टीका चढ़ाना है तो अपनी पगड़ी का गले में फन्दा डालकर इस पेड़ की शाखा से लटक जाओ। सीधे स्वर्ग की सीढ़ी चले जाओगे।

पहला—हाँ, वह इस दुनिया से कूच कर गए हैं।

[दोनों सैनिकों का प्रस्थान]

पुरोहित—बड़ा बुरा समाचार है, फिर भी इसकी सचाई जानने के लिए जोधपुर ही आना चाहिए।

[बुधुआ का प्रवेश]

बुधुआ—पुरोहित जी, भोजन·····

पुरोहित—बुधुआ घोड़े तैयार करो—हमें अभी कूच करना है।

बुधुआ—आप तो कहते थे आज यहीं विश्राम करेंगे।

पुरोहित—नहीं-नहीं अब विश्राम नहीं होगा।

बुधुआ—लेकिन भोजन·····

पुरोहित—तुझे भोजन की पड़ी है। पहले घोड़े तैयार कर।

बुधुआ—भूख तो सभी को·····

पुरोहित—जाओ—मेरा हुक्म मानो।

[दोनों का प्रस्थान]

[पट-परिवर्तन]

पाँचवाँ दृश्य

समय—संध्या

[महाराणा का विश्राम-कक्ष। महाराणा विश्राम के समय की पोशाक में एक खुली खिड़की के पास खड़े हैं। पीछे से कृष्णा आकर उनके कंधे पर हाथ रखती है।]

कृष्णा—पिता जी !

महाराणा—तू आगई, कृष्णा ! उधर देख पूर्णिमा के चन्द्र को देखकर झील का हृदय हिलोरें ले रहा है। प्रकृति तन्मय होकर शशि की मधुर मुस्कान का रस-पान कर रही है। उज्ज्वल ज्योत्स्ना से स्नान कर सामने किले की भव्य दीवारें कितनी सुन्दर जान पड़ती हैं। कितना सौन्दर्य है इस चाँदनी रात में, कृष्णा !

कृष्णा—हाँ, पिता जी, जी करता है इस समय झील में नाव खेई जाय।

महाराणा—नहीं बेटी, मैं इसी झरोखे में से—दूर रह कर ही प्रकृति का रास देखना चाहता हूँ। जाओ बेटी, अपनी वीणा ले आओ और इस मूक चाँदनी रात को मुखरित कर दो।

[कृष्णा का प्रस्थान। महारानी का प्रवेश।]

महाराजा—हाँ—हाँ सुनता हूँ—तुम गाओ।

महारानी—महाराणा जी, आप होश में·····

महाराणा—(महारानी की तरफ मुँह करके) ओहो, तुम हो ! मैंने समझा कृष्णा है।

[फिर बाहर देखने लगते हैं]

महारानी—कृष्णा के विवाह के लिए·····

महाराणा—उधर देखो महारानी, कैसी मादक चाँदनी रात है। प्रकृति हमें निमंत्रण दे रही है। चलो झील की लहरों पर हम राधा-कृष्ण बनकर नाचें। बोलो, महारानी, अपना जीवन इतना भार-हीन कर सकती हो कि बिना नाव के भी जल पर चल सको।

महारानी—कल राज-जौहरी·····

महाराणा—प्रकृति ने आकाश की ओढ़नी में कितने नक्षत्रों के रत्न टाँक रखे हैं। उपवन में कितने फूल खिला रखे हैं। उस विराट जौहरी की दूकान में किसी वस्तु का मोल नहीं देना पड़ता। जिसके पास हृदय है उसके लिए प्रकृति के सभी गहने खुले रखे हैं। जी चाहे जिससे शृङ्गार करो।

महारानी—आप नहीं सुनेंगे, मैं जाऊँ ?

महाराणा—आकाश के उस कोने में बादल की एक टुकड़ी दिखाई पड़ रही है। कहीं वह उमड़ कर सारे आकाश में न छा जाय। मेरा चाँद ओझल न हो जाय।

महारानी—(झुँझला कर) एक जान और सौ झँझटें। सब अकेले ही देखना पड़ेगा।

[महारानी का प्रस्थान और कृष्णा का वीणा लेकर प्रवेश।]

कृष्णा—सुनिए।

महाराणा—(आकाश की ओर देखते हुए ही) नहीं, अभी नहीं!

कृष्णा—तो वीणा रख आऊँ, पिता जी!

महाराणा—(कृष्णा की ओर देखकर) ओह, तू है! मैंने समझा

महारानी हैं। हाँ-हाँ गाओ, बेटी! तुम कठोर काले पर्वत पर से प्रवाहित होने वाले फेनोज्ज्वल प्रपात की धारा हो। काँटों के बीच खिलने वाला गुलाब का फूल हो। गाओ कृष्णा, अपने कल-कण्ठ के स्वर की लहरों में महाराणा का व्यक्तित्व डुबा दो।

कृष्णा—(गीत)

चाँदनी मैं चन्द्रमा की।

मैं गगन से आ रही हूँ
मधु निशा के क्षण बिताने।
इस सतम नीरस जगत् को
मृदु, सरस, सुन्दर बनाने।

विश्व का मन हो तरङ्गित
देखकर शुचि एक झाँकी।
चाँदनी मैं चन्द्रमा की।

बादलों को रोक दो, वे
आवरण शशि पर न डालें।
प्यास-पीड़ित मन खुशी से
प्रेम-रस के पात्र ढालें।

मानवों की कामना की
रह न जाए साध बाकी!
चाँदनी मैं चन्द्रमा की।

दो घड़ी मधु-यामिनी है
फिर तरुण किरणें अरुण की।

[सहसा वीणा का तार टूट जाता है]

महाराणा—बंद क्यों कर दिया, बेटी ! जैसे किसी ने स्वर्ग से उठाकर रसातल में फेंक दिया हो।

कृष्णा—वीणा का तार टूट गया, पिता जी।

[महारानी का प्रवेश]

महारानी—क्या सारी रात इसी खिड़की पर बिता देनी है।

महाराणा—इसी तरह सहसा जीवन का तार टूट जाता है। यह वीणा बेकार हो जाती है।

[एक दासी का प्रवेश]

दासी—अन्नदाता, पुरोहित जी आए हैं।

महाराणा—(शंकित भाव से) पुरोहित जी, इस समय उन्हें यहीं भेज दो।

महाराणा—(जैसे सपना देखते हुए जागे हों) वे तो जोधपुर गये थे। बहुत जल्दी आ गए। बात क्या है।

महारानी—गनीमत है—महाराणा जी को होश तो आया !

महाराणा—बेहोश आदमी को होश में लाने के लिए जबर्दस्त धक्का चाहिए।

[पुरोहित जी का प्रवेश]

पुरोहित—अन्नदाता चिरंजीव रहें।

महाराणा—पुरोहित जी के चरणों में प्रणाम !

महारानी—पालागन पुरोहित जी !

[कृष्णा पुरोहित जी के पैर छूती है]

पुरोहित—मेवाड़ के राजवंश का यश बढ़े।

महारानी—बड़ी जल्दी लौट आए, पुरोहित जी ! बड़ी जल्दी टीका झेलने की रसम हो गई।

पुरोहित—नहीं महारानी जी, रसम नहीं हो सकी।

महाराणा—क्यों ?

पुरोहित—मैं टीका वापस ले आया हूँ।

महाराणा—किसकी आज्ञा से ? ब्राह्मण होने के कारण राजाज्ञा का अपमान करने के दण्ड से आप नहीं बच सकते !

पुरोहित—मेरा इसमें कोई अपराध नहीं है, महाराणा जी महाराजा अभयसिंह·····

महाराणा—उन्होंने टीका अस्वीकार किया ? मैं यह अपमान नहीं सह सकता। (जोश में आकर बाहर जाने लगते हैं। महारानी रोकती है।) बाप्पा रावल का खून एकदम पानी नहीं हो गया है। (महारानी को झटककर चले जाते हैं।)

पुरोहित—पहले मेरी बात तो सुन लीजिए !

महारानी—क्या पागल हो गए हैं, महाराणा जी !

[महाराणा के पीछे-पीछे प्रस्थान]

कृष्णा—एक पुत्री माँ-बाप के लिए कितनी चिंताओं का कारण बन जाती है, पुरोहित जी !

पुरोहित—चिंता किस बात की है राजकुमारी। हमारी चाँद-सी बेटी के लिए क्या वर का अभाव है ?

[संग्रामसिंह और महारानी महाराणा को पकड़े हुए आते हैं।]

संग्रामसिंह—इस समय कहाँ चले थे, महाराणा जी !

महाराणा—मैं कृष्णा का अपमान नहीं सह सकता।

संग्राम—वह तो कोई भी सिसौदिया नहीं सह सकता। बात क्या है ?

पुरोहित—पहले मेरी बात सुन लें, महाराणा जी ! महाराज

अभयसिंह जी ने टीका वापस नहीं किया—बल्कि अब वह संसार में नहीं हैं।

[राजकुमारी कृष्णा वीणा लेकर चली जाती है—जिसका टूटा हुआ तार झनझना उठता है।]

महाराणा—ओह, यह बात है!

महारानी—इस तरह टीके का लौट आना अच्छी बात नहीं। कई दिनों से मेरी दाहिनी आँख फड़कती थी। पता नहीं क्या होनहार है?

संग्राम—महारानी जी, शंकाशील होना स्त्री-जाति का स्वभाव है, वे कल्पना के भूत बनाकर भय से काँपती रहती हैं। हमारी कृष्णा राजरानी बनेगी इस में संदेह नहीं है।

पुरोहित—मारवाड़ के अन्य सरदार कहते थे वहाँ के वर्तमान महाराज मानसिंह जी को टीका चढ़ा दिया जाय।

महारानी—नहीं, जहाँ से एक बार टीका फिर आया है वहाँ अब नहीं भेजना चाहिए।

संग्राम—मेरी सम्मति में यह टीका अंबरनरेश महाराज जगतसिंह को भेज दिया जाय।

महाराणा—ठीक है, पुरोहित जी, टीका जयपुर ले जाना होगा।

पुरोहित—जो आज्ञा महाराणा जी!

[पुरोहित जी का प्रथान]

महारानी—(संग्रामसिंह से) आप इस समय इधर कैसे भूल पड़े? आप न होते तो महाराणा जी को मैं कैसे सँभालती?

संग्राम—मुझे यह कहते हुए दुःख होता है कि मैं कल परम प्रिय मेवाड़-भूमि को छोड़ रहा हूँ। जाते वक्त बाप्पा रावल की

गद्दी के स्वामी के चरणों में नमस्कार करना था, इसलिए आया था।

महाराणा—तुमने ऐसा निश्चय क्यों किया ?

महारानी—लाख कष्ट होने पर भी कोई अपनी बपौती नहीं छोड़ता।

संग्राम—इस बात को मैं खूब समझता हूँ, महारानी जी ! यह मोह मुझे किसी पाप-पथ पर ले जाता, इसलिए अपने हृदय पर पत्थर रखकर मैं जाता हूँ।

महाराणा—तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिए।

संग्राम—यदि भिखारी बनकर भी जीवित रहने का अवसर मिलता तो मैं इस भूमि को नहीं छोड़ता। जिनके हाथ में शासन-शक्ति है वे चूड़ावत शक्तावतों को स्वत्व-हीन बनाकर ही चुप रहना नहीं चाहते, बल्कि वे हमें संसार से ही उठा देना चाहते हैं।

महाराणा—यह न समझो, संग्रामसिंह कि मैं अंधा हूँ। आठों पहर मेरे हृदय में एक तूफान उठता रहता है। मैं चाहता हूँ कि किसी तरह मेवाड़ में न्याय और प्रेम का शासन हो।

महारानी—अमीरखाँ, सिंधिया या होलकर की सहायता से क्या चूड़ावतों को होश में नहीं लाया जा सकता ?

संग्राम—ऐसा कुविचार मुझे भी सूझा था; महारानी जी ! किंतु उस दिन दौलतसिंहजी ने मेरी आँखें खोल दीं। जिन चूड़ावतों ने मेवाड़ के मान की रक्षा के लिए सदा हँसते-हँसते प्राण चढ़ाए हैं, जिनके शरीर में वही रक्त है जो हमारे शरीर में, उनके दो-एक सरदारों की कुबुद्धि का दण्ड सम्पूर्ण शाखा को देना उचित नहीं होगा। मेवाड़ के गाढ़े समय में काम आने वाले वीर योद्धा व्यर्थ ही मौत के शिकार होंगे।

महारानी—न्याय में दया को स्थान नहीं है।

संग्राम—किन्तु, राजनीति न्याय से भिन्न वस्तु है। शक्तावतों का नाश करने के लिए चूड़ावतों ने बाहरी शक्तियों का उपयोग किया है—उसके बदले में मेवाड़ राज्य का लाखों रुपया और सोना देने वाली भूमि उन्हें देनी पड़ी है। उन रकमों को चुकाने में रावला की महिलाओं के आभूषण भी बेचने पड़े हैं। आज यह स्थिति है कि कृष्णा के विवाह के लिए भी आवश्यक धन आपके पास नहीं है।

महाराणा—किन्तु, अन्याय को चुपचाप सहना भी तो कायरता है।

संग्राम—किसी बड़े हित के लिए छोटे हित की बलि देनी ही पड़ती है। राजवंश की शाखाओं की प्रतिद्वन्द्विता का परिणाम मेवाड़ का सर्वनाश हो यह मैं नहीं चाहता। अजीतसिंह को प्रभुता की भूख है—वह अपनी आकांक्षा पूर्ण करे। उसके मार्ग के काँटे शक्तावत यहाँ से चले जायंगे। बाप्पा रावल की गद्दी का मान रहना चाहिए।

महाराणा—नहीं भाई, तुम जाओगे तो मैं भी गद्दी छोड़ दूँगा।

संग्राम—नहीं महाराणा जी, मुझे मेवाड़ के सुदिनों की आशा है। उसी आशा ने मुझे इस निर्णय पर पहुँचाया है। जाते समय महाराणा जी की सेवा में कुछ भेंट करना चाहता हूँ। मैंने सुना है कृष्णा के विवाह के लिए अजीतसिंह सिंधिया के पास कुछ गाँव गिरवी रखकर दो लाख रुपया ऋण ले रहे हैं। कृष्णा मेरी भी तो बेटी है, उसके विवाह में यदि मैं खर्च करूँ तो क्या आपत्ति है?

यह लीजिए दो लाख रुपए की हुंडी। कल सेठ साँवलदास से भुनवा लेना।

[हुंडी महाराणा को देते हैं। महाराणा की आँखों में आँसू आ जाते हैं।]

महारानी—तुम देवता हो, संग्रामसिंह जी! इस संकट के समय इतना रुपया कहाँ से लाए?

संग्राम—मैं केवल मनुष्य हूँ। अपने कुल की प्रतिष्ठा रखने के लिए घर की मूल्यवान वस्तुएं मैंने बेच दी हैं।

महाराणा—तुम अपनी हुण्डी ले लो, संग्रामसिंह! मैं तुम्हें हर तरह से कंगाल·····

संग्राम—मेरे प्रेम का अपमान न करो, महाराणा जी! मेरा सबसे बड़ा धन बाप्पा रावल की गद्दी का मान है। वह बना रहना चाहिए। धन तो हाथों का मैल है, ईश्वर चाहेगा तो फिर बहुत हो जायगा। भाभी, अपने चरणों की रज दो, और आशीर्वाद, जिससे भावी के क्रूर प्रहार सहने का बल मुझे मिले।

[महारानी के चरण छूते हैं]

महारानी—(आँखों में आँसू भरकर) राजपूतों का आत्मत्याग अभी मरा नहीं है, इसका तुम उज्ज्वल उदाहरण हो—प्रबल प्रमाण हो। तुम्हारी सद्वृत्तियाँ ही तुम्हारे जीवन का प्रकाश बनेंगी, संग्रामसिंह जी! तुमने मेवाड़ राज-वंश की डूबती हुई प्रतिष्ठा की रक्षा की है! तुम्हारा यश अमर रहेगा।

संग्राम—(महाराणा से) आओ भैया, दो नीरभरी नदियों की भाँति आज हम मिल लें।

[दोनों गले मिलते हैं, कृष्णा आती है। संग्रामसिंह एक हाथ उसके सिर पर रखते हैं।]

[पटाक्षेप]

दूसरा अंक

पहला दृश्य

समय—रात के ९-१० बजे के लगभग

स्थान—जवानदास का शयन-कक्ष

[कमरे की सजावट एक विलासी आदमी की परिचायक है। एक ओर एक शानदार पलंग बिछा हुआ है। सिरहाने के पाए पर दो बेले की मालाएं टँगी हुई हैं। पलंग के पास ही एक हाथी-दाँत की तिपाई रखी है, जिस पर रजत झारी में शराब रखी हुई है। उसके पास ही प्याला है। जवानदास प्रवेश कर साफ़ा-अँगरखा आदि कपड़े उतारकर खूँटी पर टाँगता है और अँगड़ाई लेता हुआ पलंग पर बैठता है।]

जवानदास—ऊपर चढ़ने की इच्छा में जीवन दिन-दिन नीचे की ओर जा रहा है। आकांक्षा की आग से प्राण जल रहे हैं। प्यास बुझाने का जितना प्रयत्न करता हूँ यह और भड़कती है।

जवानदास—तुम आ गईं, राधा ! आओ बैठो !

[हाथ पकड़कर अपने पास बैठाना चाहता है, लेकिन राधा हाथ छुड़ा लेती है]

राधा—मैं अपने समय की स्वामिनी नहीं हूँ ! महारानी जी के एक कार्य से इधर आई थी—सोचा दो घड़ी आपके भी दर्शन कर लूँ ! मैं सेविका हूँ, मुझे शीघ्र ही रावला में पहुँचना है।

जवान—यही अन्तर तो मेरे प्राणों में विद्रोह की ज्वाला

प्रज्ज्वलित करता है। एक महारानी और दूसरी दासी क्यों हो ? उच्च कुल में जन्म लेने के कारण ही एक व्यक्ति सम्मान और सुविधा का अधिकारी क्यों हो ?

राधा—ऐसा सदा से होता आया है । इसे कोई नहीं बदल सकता।

जवान—बदल क्यों नहीं सकता ? वे सब, जिन्हें समाज घृणा की दृष्टि से देखता है, अपनी शक्तियों को एकत्रित करें तो इन महाप्रभुओं और उच्च वंशाभिमानियों का अभिमान चूर कर सकते हैं।

राधा—यह एक सुन्दर सपना है। जिन लोगों को रोटी-पानी के चक्कर से अवकाश नहीं है वे सामूहिक रूप से एक होकर खड़े हो सकेंगे यह असंभव बात है। समाज का विधान ऐसा है कि उसके अनुसार हमें बड़े लोगों की सेवा करनी पड़ेगी और उनकी सेवा करने में अपना बड़प्पन मानना पड़ेगा।

जवान—नहीं, मैं इस विधान को बदलूँगा। मैं तुम्हें मेवाड़ की राजरानी बनाऊँगा। ज़रा अपने जादू-भरे हाथों से उस झारी में से एक प्याला तो दो।

[राधा शराब ढालकर देती है]

जवान—(शराब का घूँट लेता हुआ) जब तुम ढालकर देती हो, राधा, तो इसका नशा दूना हो जाता है। समझने लगता हूँ कि मैं वास्तव में मेवाड़ का महाराणा हूँ और तुम मेवाड़ की महारानी।

राधा—शराब का नशा ज्यादा देर नहीं टिकता । ऐसे ही यदि कहीं आपके प्रयत्न सफल हुए तो मेवाड़ का राज-मुकुट

अधिक दिन आपके सिर की शोभा नहीं बढ़ा पायगा।

जवानदास—क्यों ?

राधा—मेवाड़ के उच्च वंशाभिमानी राजपूत दरोगन के पुत्र को महाराणा और एक कहारिन की पुत्री को महारानी स्वीकार कर सकेंगे ? बड़े-बड़े भयङ्कर षड्यन्त्रों के बाद जो फल हम प्राप्त करेंगे वह इतना ज़हरीला होगा कि हमें भी जीवित न रहने देगा।

जवान—लेकिन मेरे शरीर में भी वही रक्त है जो मेवाड़ के महाराणा के शरीर में। हम दोनों एक ही पिता के पुत्र हैं।

राधा—किंतु, आपकी माता·····

जवानदास—राजपूतनी नहीं थीं—

राधा—और नियमतः विवाहिता नहीं थीं।

जवानदास—मैं प्रेम और विवाह को भिन्न नहीं समझता। अग्नि के चारों ओर चक्कर लगाने और मन्त्र पढ़ लेने से ही विवाह नहीं होता। हृदय का मिलन ही सच्चा विवाह है।

राधा—किन्तु ये लोग तो हमें क्षणिक वासना का खिलौना बनाते हैं। इस प्रकार के खेल का परिणाम जो सन्तान होती है समाज उसे घृणा की दृष्टि से देखता है।

जवानदास—पग-पग पर उसे अपमानित होना पड़ता है। मुझे भी सरदार लोग व्यंगभरी दृष्टि से देखते हैं। महाराणा भी मेरे-लिए जो कुछ करते हैं उसमें कृपा का भाव भरा रहता है। दया के ये टुकड़े ज़हर जान पड़ते हैं।

राधा—यह ज़हर आपको चुपचाप पी लेना होगा।

जवान—नहीं, मैं ऐसी आग जलाऊँगा जिसमें सम्पूर्ण मेवाड़

भस्म हो जायगा। चूड़ावतों को शक्तावतों के विरुद्ध उभारकर मैंने शक्तावतों को समाप्त कर दिया है और अब इन चूड़ावतों से ऐसे घृणित और क्रूर कार्य कराऊँगा कि सम्पूर्ण मेवाड़ का वातावरण इनके विरुद्ध हो जाय और इनका नाश करने पर तुल जाय।

राधा—बड़ी भयंकर साध है आपकी। पता है इसके लिए कितना रक्त-पात करना पड़ेगा ?

जवान—मेरी प्रतिहिंसा तभी शान्त होगी। यह लोग मुझे मेवाड़ का "पाँचवाँ-पूत" कहते हैं। मुझे दूसरी श्रेणी के सरदारों से भी नीचे स्थान देते हैं मेरी माँ दरोगन थी तो इसमें मेरा क्या अपराध है ? असम्मान, घृणा और व्यंग के वाणों से मेरा हृदय छलनी हो गया है, राधा ! और इसीलिए वह सर्वनाश का खेल खेलना चाहता है।

राधा—और दरोगन होना ही कौन-सा अपराध है ?

जवान—मेरी उत्पत्ति में मेरी माँ का क्या अपराध ? क्यों महाराणा अपने उच्च कुल को छोड़कर एक नीच कही जाने वाली नारी के रूप के भिखारी बने।

राधा—इन उच्च कुलाभिमानी लोगों के पास धन है और प्रभुता। प्रलोभन और धमकी के शस्त्रों से वह हमें अपनी वासना का शिकार बनाते हैं।

जवान—नीच कुल की रानी की इस बेबसी को लोग पाप कहते हैं। इस बेबसी की सन्तान को घृणा और व्यंग की वर्षा सहनी पड़ती है। (प्याला समाप्त कर राधा को देता है) और दो, राधा !

[राधा और शराब देती है।]

जवानदास—(शराब को चुस्की लेता हुआ) हमारे पास वे साधन नहीं, जिनसे हम समाज में सम्मानपूर्ण आसन पा सकें। प्रतिहिंसा हमें उन मार्गों पर ले जाती है जो मनुष्यता के विरुद्ध होते हैं।

राधा—लोग हमें मनुष्य नहीं समझते, फिर हमसे मनुष्यता की आशा क्यों करते हैं ?

जवान—क्योंकि इसमें उनका स्वार्थ है। वे हमारी मनुष्यता इसी में समझते हैं कि हम बेगैरत होकर समाज के अत्याचार चुपचाप सह लें; ये लम्बी-लम्बी तीखी-तीखी तलवारें, बड़ी-बड़ी तराजुएं और पैनी-पैनी लेखनियाँ लेकर हम लोगों को अपना दास बनाए रखें। नहीं राधा—इस जन्मगत जातीय अभिमान को मिट्टी में मिलाना ही चाहिए। इनका सङ्गठन इतना बलशाली है कि सीधे रास्ते इनसे पार पाना असम्भव है। हमें वे साधन अपनाने होंगे जो रात के अन्धकार में काम करते हैं। हत्या ! षड्यन्त्र !

[प्याला खाली करके तिपाई पर रख देता है और जोश में घूमने लगता है]

राधा—रात के अन्धकार में कार्य करने वाले को बहुत सावधान रहने की आवश्यकता है; नहीं तो आपके सपनों का राजमहल ताश के पत्तों के महल के समान धराशायी हो जायगा। हाँ, एक बात तो मैं कह ही नहीं पाई ! जिसके लिए मैं आई थी।

जवान—क्या ?

राधा—शक्तावत सरदार संग्रामसिंह जी के परामर्श से राज-कुमारी कृष्णा का टीका अम्बरनरेश जगतसिंह जी को भेज दिया गया है।

जवान—अच्छा ऐसी बात है। बहुत ठीक। मिल गया मेरे षड्यन्त्र-चक्र के लिए साधन।

राधा—नमस्कार! मैं जाती हूँ।

[राधा का प्रस्थान]

जवान—लेकिन, राधा! सुनो तो!

[राधा के पीछे प्रस्थान]

[पट-परिवर्तन]

दूसरा दृश्य

स्थान—उदयपुर की झील का एक तट
समय—संध्या

[एक धीमर-लड़का बैठा गाने में मस्त है।]

धीमर लड़का—(गीत)

है छोटी-सी नौका मेरी।
छोटी-सी पतवार।
रानी जी का बजरा जिसका
है रेशम का पाल।
जिसको खेते चतुर खिवैया
है मस्तानी चाल॥
अटका रानी जी का बजरा
नाव लगी है पार।
है छोटी-सी नौका मेरी
छोटी-सी पतवार॥
रत्न-जड़े गहनों से करतीं
रानी जी शृंगार।
पर राजा जी पास न आते
करने उनको प्यार॥
पहनाता अपनी महरी को
मैं फूलों का हार।
है छोटी-सी मेरी नौका
छोटी-सी पतवार॥

मेरी महरी के हँसने से
हँस उठती है रात ।
फूल बिखरते हैं अधरों से
जब करती है बात ॥

होड़ स्वर्ग से करता मेरा
छोटा-सा संसार ।
है छोटी-सी मेरी नौका
छोटी-सी पतवार ॥

[कृष्णा और रमा का प्रवेश]

कृष्णा—तुम बहुत अच्छा गाते हो, लड़के !

रमा—किससे सीखा है, तूने गाना ?

धीमर—सीखता किससे ? जैसे मछली पकड़ना हमें अपने आप आ गया, उसी तरह गाना भी । बड़ों को नाव चलाते देख जैसे हम भी डाँड चलाने लगे—उसी तरह औरों को गाते देखकर गाने भी लगे ।

कृष्णा—अच्छा एक बार फिर वह गीत सुनाओ !

धीमर—क्यों सुनाएं जी ? क्या मैं आपकी तरह निठल्ला हूँ । अभी वह मछलियों का टोकरा लेकर उस पार जाना है ।

रमा—उस पार कहाँ ?

धीमर—उस पार दीवान जी ❀ के राजमहल में ।

❀महाराणा । मेवाड़ के महाराणा महादेव 'एकलिंग' को मेवाड़ की गद्दी का स्वामी और अपने-आपको उसके दीवान कहते हैं ।

कल हमारी राजकुमारी जो की वर्षगाँठ है । राज्य के सभी बड़े-बड़े लोगों को भोज दिया जायगा । इसीलिए मछलियाँ ले जानी हैं।

रमा—तब तो चाँदी है । इन मछलियों के खूब दाम मिलेंगे ।

धीमर—राम ! राम ! दाम कैसे ? दीवान जी हमारे अन्नदाता हैं । क्या राजकुमारी की वर्षगाँठ रोज आती है ? हम लोग गरीब हैं, तो क्या खुशी के अवसर पर कुछ भेंट करने का भी अधिकार नहीं रखते ?

कृष्णा—अपनी नाव में हमें थोड़ी देर सैर करा लाओ न ?

धीमर—न बाबा, ऐसा नहीं कर सकता । मेरी नाव है छोटी। इस झील में बड़े-बड़े मगर हैं। किसी ने नाव उलट दी, तो ऐसी सुन्दर सवारियाँ मगर के या झील के उदर में समा जायंगी । मुझे डर लगता है, सेठानी जी !

रमा—अरे सेठानी किसे कहता है—यहाँ सेठानी कौन है ?

धीमर—ये झलमलाते कपड़े, ये जगमगाते गहने, ये चमकती हुई आँखें—सेठानी जी नहीं तो आप क्या हैं ?

रमा—हम राजपूतनी हैं !

धीमर—अच्छा तो आप ठकुराइन हैं । तब तो डर लगता है—कहीं ठाकुर साहब आ गए तो खट से मेरा सिर धड़ से अलग कर देंगे ।

कृष्णा—डरो मत, मेरा कोई ठाकुर नहीं है ।

रमा—हाँ, यह अभी कुमारी हैं।

धीमर—इतना रूप और अभी तक कुमारी !

कृष्णा—तू बड़ा वाचाल है रे, मालूम होता है कभी भले आदमियों में नहीं रहा ।

धीमर—नहीं कुमारी जी, हम लोगों में भला कोई नहीं होता। बनिया-बामन-ठाकुर आदि सभी बड़े आदमी हमें 'कमीना' कहकर पुकारते हैं। भले आदमी न कभी हमें अपने पास बैठाते हैं, न भली आदतें हम सीख पाते हैं।

कृष्णा—तुम्हारा नाम क्या है ?

धीमर—कलुआ।

रमा—कैसा बुरा नाम है ?

धीमर—हाँ, नाम भी बुरा है और काम भी।

कृष्णा—काम तो कोई भी बुरा नहीं होता, कलुआ !

कलुआ—बुरा नहीं तो क्या है ! (टोकरी की ओर संकेत करके) देखो, रोज इतने जीवों को हत्या करते हैं, तब कहीं यह पापी पेट भर पाता है।

कृष्णा—हम राजपूत हज़ारों आदमियों की जानें लेते हैं, तब कहीं हमारी प्रभुता को प्यास बुझती है।

कलुआ—राजपूत अपने देश के लिए लड़ते हैं।

कृष्णा—नहीं, कलुआ, वह ज़माना गया। अब तो टकों पर ज़िंदगियाँ बेचते हैं। स्वार्थी लोगों की इच्छाओं का खिलौना बनते हैं। तुम्हारा काम हमारे काम की अपेक्षा अच्छा है।

कलुआ—सो कैसे !

कृष्णा—भाई, तुम अपना ईमान तो नहीं बेचते। तुम्हारे नाम का समाज और देश पर तो घातक प्रभाव नहीं पड़ता। तुम जीव-हत्या इसलिए करते हो कि पेट भरने का तुम्हारे पास दूसरा कोई साधन नहीं है।

रमा—जब तक मछलियाँ खाने वाले हैं, बेचने वाले भी

रहेंगे। हम लोग ही पैसे दे-दे कर तुमसे यह पाप कराते हैं।

कृष्णा—ठीक है न यह बात ?

कलुआ—आप तो मुझे काँटों में घसीटती हैं। मेरी क्या मजाल कि मैं ऐसा कहूँ ?

कृष्णा—सच बात कहने में डर किस बात का ?

कलुआ—सच बोलने के लिए हाथ भर का कलेजा चाहिए, कुमारी जी ! आप लोग अमीर हैं इसीलिए हम लोग गरीब हैं—लेकिन हमारी सच्ची बात हमारे हृदय में घुटकर मर जाती है। हम आपस में भी ऐसी बात नहीं कह सकते।

रमा—क्यों ?

कलुआ—डर लगता है। बड़े लोग सुन लें तो गजब हो जाय। ऐसी बातें कहने वाले अपराधी समझे जाते हैं—समाज में अशान्ति फैलाने वाले समझे जाते हैं।

कृष्णा—तुम इतनी बातें कैसे सोच सकते हो ?

कलुआ—ज़रा अपने कपड़े तो देखें—फिर मेरे भी। कितना अन्तर है दोनों में। हम गँवार-अनपढ़ हैं—लेकिन हमारी आँखें तो अन्धी नहीं हैं। वे जो कुछ देखती हैं उसका दिमाग पर असर तो होता ही है।

रमा—नहीं, कोई तुम्हें बहकाता है।

कलुआ—हाँ, हमारे पेट की ज्वाला हमें बहकाती है। कभी आपको हमारी तरह सारे दिन घोर परिश्रम करने के बाद भी भूखा रहना पड़े तब आपकी समझ में आया कि इन बातों के लिए किसी के बहकाने की आवश्यकता नहीं है। यह असन्तोष तो हमारे हृदय के भीतर से निकलता है।

कृष्णा—आज तुमसे बहुत-सी नई बातें मालूम हुई हैं, कलुआ ! रमा, हम दुनिया से कितनी दूर हैं।

[राधा का प्रवेश]

राधा—राजकुमारी जी, आप यहाँ हैं। महारानी जी कब से बाट देख रही हैं। चलिए।

कृष्णा—कैसी मुसीबत है ? दो घड़ी घूमना भी दुर्लभ है। चलो रमा !

[कृष्णा, रमा और राधा का प्रस्थान]

कलुआ—राजकुमारी ! तो ये राजकुमारी थीं ! सचमुच जैसा सुना था वैसी हैं। बिलकुल अप्सरा !

[मछली की टोकरी सिर पर लादता है]

कलुआ—(गीत)

छोटी-सी है मेरी नैया
छोटी-सी पतवार।

[गीत दोहराता हुआ चला जाता है]

[पट-परिवर्तन]

तीसरा दृश्य

समय—रात्रि का प्रारम्भ

स्थान—जोधपुर की एक विशाल अट्टालिका का एक सुसज्जित कमरा

[बहुमूल्य कालीन बिछे हुए हैं और तरतीब से मसनद रखे हुए हैं। बीच के मसनद के सहारे अमीरखाँ बैठा हुआ है। उसके पास ही एक दूसरे मसनद के सहारे एक और पठान सरदार बैठा हुआ है। दोनों का डील-डौल तगड़ा और चेहरा रौबदार है। बीच में एक बड़ी नेज़मवाला हुक्का रखा है। अमीरखाँ हुक्का पीता हुआ साथी से बातें करता जाता है।]

अमीरखाँ—महाराणा मानसिंह ने हम लोगों के सत्कार में कोई कमी नहीं रखी।

साथी—आपका रौब ही ऐसा है कि वह सब-कुछ कर लेता है।

अमीर—अभी तक मेवाड़ मेरे पंजे में नहीं आया, इसका मुझे अफ़सोस है।

साथी—शक्तावतों ने एक बार आपसे चर्चा शुरू तो की थी।

अमीर—हाँ, लेकिन वह सँभल गए। सुना है संग्रामसिंह ने मेवाड़ छोड़ दिया और चूड़ावतों और शक्तावतों का सङ्घर्ष कुछ समय के लिए रुक गया है। मेवाड़ सारे राजपूताने की नाक है। वंश का जितना अभिमान सिसौदियों को है उतना किसी को नहीं।

साथी—इनके पूर्व पुरुषों ने अपने देश का मान रखने

के लिए क्या क्या कुर्बानियाँ दी हैं। इनका अभिमान ग़लत नहीं है।

अमीर—इसका अथ यह नहीं कि ये दूसरे मनुष्यों को मनुष्य ही न समझें। प्रत्येक मनुष्य अपनी जाति, अपने धर्म और देश के लिए जान पर खेल सकता है। प्रत्येक व्यक्ति में यह मनोवृत्ति छिपे रूप में रहती है—उचित प्रोत्साहन पाकर वह विकसित हो उठती है। हिन्दुस्तान के राजपूत देश की रक्षा करना केवल अपना कार्य समझते हैं और इसीलिए अपने-आपको अधिक सम्मान का अधिकारी मानते हैं।

साथी—हम मुसलमानों का सितारा इस देश में सदा के लिए डूब गया है। हमें भी इस देश के निवासियों से हिल-मिलकर रहने की उचित सुविधा मिलनी चाहिए।

अमीर—जब हमारे हाथों में शासन था—राजपूतों ने हमारे साथ अपनी बेटियाँ ब्याह कर हमारी प्रभुता के आगे सिर तो झुकाया था, फिर भी वे अपनी संस्कृति को हमसे ऊँची ही मानते रहे। सामाजिक रूप में उन्होंने हमें अपने पास स्थान नहीं दिया।

साथी—इसके लिए धार्मिक कट्टरता जिम्मेवार है। हम लोग भी अपनी धार्मिक कट्टरता को इस मिलन में बाधा बनाए रहे।

अमीर—मैं राजपूतों के अभिमान को कुचलना चाहता हूँ। इस समय राजस्थान के प्रत्येक राज्य में गृह-युद्ध जारी है। सरदारों ने अपने-अपने दल बना रखे हैं, प्रत्येक दल ने गद्दी का अपना-अपना हक़दार बना रखा है। षड्यन्त्र और हत्याओं का बाज़ार गरम है। मैं गृह-युद्ध की ज्वाला को और अधिक

भड़काकर राजस्थान को निष्प्राण बना देना चाहता हूँ। सम्पूर्ण राजस्थान में अमीरखाँ की तूती बोलेगी।

[महाराणा मानसिंह का प्रवेश। अमीर खाँ उठकर स्वागत करता है। साथी भी खड़ा हो जाता है।]

अमीरखाँ—आइए महाराजा साहब!

[बीच के मसनद पर महाराजा मानसिंह को बैठाता है। स्वयं दूसरे मसनद पर बैठता है।]

अमीरखाँ—(साथी से) अपने ब्राह्मण महाराज से कहो महाराजा साहब के लिए अमल-पान लाए।

मानसिंह—नहीं—नहीं! मैं अमल लेकर आया हूँ।

अमीरखाँ—(साथी को आँखों-आँखों में जाने का इशारा करता है) आपने बड़ा कष्ट किया?

[साथी का प्रस्थान]

मानसिंह—नहीं भाई, कष्ट किस बात का? जब आप मेरे निमन्त्रण पर जोधपुर तक आ सकते हैं तो क्या मैं राजमहल छोड़कर इस हवेली तक नहीं आ सकता हूँ। मुझे तो इसमें लज्जा मालूम होती है कि अपने स्वार्थ के लिए आपको यहाँ बुलाकर कष्ट दिया।

अमीरखाँ—मनुष्य ही मनुष्य के काम करता है, महाराजा साहब, मुझसे आपकी सेवा हो सके तो मैं अपना सौभाग्य समझूँगा।

मानसिंह—आपको तो पता ही है, सवाईसिंह ने धोंकल नाम के एक बालक को स्वर्गीय महाराजा भीमसिंह का पुत्र कहकर

मारवाड़ राज्य की गद्दी का अधिकारी घोषित किया है। अधिकांश जागीरदार और सरदार उसके साथ हैं।

अमीरखाँ—सच बताइए, क्या सचमुच धोंकल स्वर्गीय महाराजा भीमसिंह जी का पुत्र है?

मानसिंह—स्व० महाराजा के स्वर्गवास के समय उनकी कोई महारानी गर्भवती थी—ऐसा मेरे सुनने में नहीं आया।

अमीरखाँ—अच्छा तो यह षड्यन्त्र है?

मानसिंह—अंबर-नरेश की एक बहन स्वर्गीय भीमसिंह जी की महारानी है। उन्हीं का यह पुत्र बताया जाता है।

अमीरखाँ—तो जयपुर-नरेश जगतसिंह का भी इसमें हाथ होगा।

मानसिंह—सो तो है ही।

अमीरखाँ—इसका मतलब यह है कि मामला बहुत टेढ़ा है। हमें इन सरदारों से ही नहीं जयपुर-नरेश से भी लोहा लेना है।

मानसिंह—इसलिए तो आपको कष्ट दिया है। इन सरदारों से तो मैं निबट लेता। सामन्तों के हाथ की कठपुतली बनना मुझे स्वीकार नहीं है और इनका सिर कुचलने के लिए मैंने एक सबल सेना सीधी अपने अधिकार में रखी है। इन सरदारों की मनमानी अब नहीं चलती, इसीलिए वे मुझे हटाकर एक 'बालक' को गद्दी का स्वामी बनाना चाहते हैं, ताकि उसके नाम पर वे लोग मनमानी कर सकें।

अमीरखाँ—मैं आपका रास्ता सदा के लिए साफ कर दूंगा, लेकिन बदले में·····

मानसिंह—जो आप कहें।

अमीरखाँ—बीस लाख रुपया। आप जानते हैं मुझे एक लाख

सेना और तोपखाना रखना पड़ता है। उसका खर्च आप लोग से ही मिलता है।

मानसिंह—मुझे स्वीकार है।

[अमीरखाँ का साथी आता है।]

साथी—नवाब साहब मेवाड़ से जवानदास जी आए हैं।

मानसिंह—महाराणा के 'धा भाई!'

अमीरखाँ—अब हमारी बात तो तय हो चुकी है। उन्हें यहीं बुलाने में कुछ हर्ज तो नहीं है?

मानसिंह—नहीं, कुछ भी नहीं।

अमीरखाँ—उन्हें यहीं भेज दो!

[साथी का प्रस्थान]

अमीरखाँ—इन जवानदास जी से आपका परिचय है?

मानसिंह—हाँ-हाँ थोड़ा जानता हूँ। आदमी तीक्ष्ण बुद्धि का है।

अमीरखाँ—आइए जवानदास! (जवानदास को लाकर बैठाता है।)

जवानदास—यह मेरा सौभाग्य है कि महाराजा साहब के भी दर्शन हो गए। आपसे मिलना मेरे लिए आवश्यक था।

मानसिंह—मुझसे क्या काम आ पड़ा?

जवानदास—काम आपका ही है। राजकुमारी कृष्णा का टीका पहले जोधपुर भेजा गया था।

मानसिंह—स्वर्गीय महाराजा भीमसिंह जी के लिए।

जवानदास—यह सम्मान व्यक्ति के लिए नहीं, गद्दी के लिए था। जब यही बात महाराणा जी से कही गई और उनसे प्रार्थना

की गई कि टीका जोधपुर ही जाना चाहिए तो उन्होंने कहा, 'वहाँ अभी गद्दी के विषय में विवाद चल रहा है। मैं अपनी बेटी को विपत्तियों में नहीं डालना चाहता।'

मानसिंह—(कुछ त्योरियाँ चढ़ाकर) हूँ !

मानसिंह—संग्रामसिंह के परामर्श से टीका जयपुर भेज दिया गया है।

अमीरखाँ—यह सरासर आपका अपमान किया गया है।

मानसिंह—मैं भी राठौर हूँ, जवानदास जी ! आन के लिए प्राण देने में राठौर किसी से पीछे नहीं रहे।

अमीरखाँ—सुना है राजकुमारी अत्यन्त सुन्दरी और गुणवती हैं।

जवान०—उसकी कीर्ति सम्पूर्ण राजस्थान में फैली हुई है। महाराजा जगतसिंह उसके उपयुक्त नहीं हैं। वह तो आप जैसे वीर पुरुष की ही सहयोगिनी बनने योग्य है।

मानसिंह—सुनिए, जवानदास जी, चाहे सारे मारवाड़ राज्य की ही बाजी लगानी पड़े, लेकिन राजकुमारी कृष्णा जोधपुर की ही राजरानी बनेगी, यह मेरा निश्चय है। यह मेरे लिए आन का प्रश्न है।

जवान०—मैं आपकी सहायता करने को प्रस्तुत हूँ।

मानसिंह—अब मुझे जाना चाहिए। चलिए न, जवानदासजी आज मेरे घर को ही पवित्र कीजिए।

जवानदास—लेकिन अभी अमीरखाँ जी से कुछ चर्चा करनी है!

मानसिंह—चलिए नवाब साहब, आप भी चलिए। दो घड़ी मनोरंजन ही होगा !

[सबका प्रस्थान]

[पट-परिवर्तन]

चौथा दृश्य

समय—संध्या

स्थान—एक रास्ते का किनारा

[कलुआ एक टीले पर बैठा हुआ गा रहा है।

कलुआ—(गीत)

मेरे मन की फुलवारी में
मैना बोली रे, बोली रे।

[दौलतसिंह प्रवेश करते हैं और कलुआ के गीत के माधुर्य से आकर्षित होकर चुपचाप खड़े होकर सुनने लगते हैं।]

कलुआ—(गीत गाए जाता है।)

द्वार-द्वार पर भीख माँगता
घूम रहा था मारा-मारा।
अनजाने में किसने भर दी
भिक्षुक की खाली झोली रे।

मेरे मन की फुलवारी में
मैना बोली रे, बोली रे।

मेरे मन में घिरकर आती
रस की कभी नहीं बदरी रे।
आज अचानक इस जीवन में
किसने है मिसरी घोली रे।

मेरे मन की फुलवारी में
मैना बोली रे, बोली रे।

आज खुली जब मेरी पलकें
दुनिया नई नज़र आई रे।
हाय, बाण-सी चुभी हृदय में
मंगल मूर्ति मधुर भोली रे।
मेरे मन की फुलवारी में
मैना बोली रे, बोली रे।

[गाता-गाता कलुआ शिला से उठकर चला जाता है। दौलतसिंह स्वप्न में डूबे-से खड़े रह जाते हैं। अजीतसिंह प्रवेश करके उनके कंधे पर हाथ रखता है। वह चौंककर अजीतसिंह की ओर देखते हैं।]

अजीत—वाह, दौलतसिंह जी, सड़क पर खड़े होकर आप सपना देखते हैं।

दौलत—उस लड़के का स्वर बहुत ही मधुर है—हठात् ही उसने यहाँ खड़ा कर लिया।

अजीत—इधर कहाँ जा रहे हैं?

दौलत—ज़रा सैर कर रहा था।

अजीत—आपके तो दर्शन ही नहीं होते। जब से संग्रामसिंह जी गए हैं—आपने भी हम लोगों से मिलना छोड़ दिया है।

दौलत—संग्रामसिंह जी का चला जाना क्या कोई छोटी-सी घटना है? क्या आपको इसका कुछ भी दुःख नहीं है?

अजीत—मुझे भी एक सूनापन-सा अनुभव होता है। उनके अभाव में मेवाड़ की ठकुराई अधूरी रह गई है। वह मेरे प्रतिद्वंद्वी हैं

तो क्या ? मैं उनकी वीरता की सराहना करता हूँ। उनकी सिंह के समान चमकती हुई आँखें, रौबदार चेहरा, चौड़ी पेशानी, लम्बी भुजाएं—बादलों के गर्जन को लज्जित करने वाली वाणी—उनका व्यक्तित्व क्या भुलाया जा सकता है ?

दौलत—आपकी हठ ने मेवाड़ को ऐसे वीरपुरुष की सेवाओं से वंचित कर दिया है।

अजीत—दौलतसिंह जी, पुश्तैनी वैर प्रयत्न करने पर भी शांत नहीं होता। पुरानी खाँसी की तरह यह बार-बार उभर आता है। आप तो जानते हैं, जब दरबार में शक्तावतों का प्रभाव था—तब उन्होंने चूड़ावतों को निस्सत्व करने में क्या उठा रखा था। हम न मरों में रहे थे, न जीवितों में।

दौलत—यह ठीक है। प्रतिशोध-भावना की अन्धी उत्तेजना में मनुष्य विवेक खो देता है। चूड़ावतों ने भी संग्रामसिंह जी के पिता, पत्नी और बच्चों का जिस निर्दयता से खून किया था—वह क्या शक्तावत भूल सकते हैं। संग्रामसिंह ने चूड़ावतों के विरुद्ध कुछ किया तो इसे हम अस्वाभाविक नहीं कह सकते।

अजीत—वे ही तो गाँठें हैं जो हमें मिलने नहीं देती। यह गृह-युद्ध चलता ही रहेगा।

दौलत—यह मेवाड़ का दुर्भाग्य है, अजीतसिंह जी! इस गृह-युद्ध का प्रभाव राज्य-शासन पर पड़ता है। उसे निस्तेज नहीं होने देना चाहिए। हमारे चारों ओर शत्रु जोर पकड़ रहे हैं। डेढ़ हजार वर्षों से जिस मेवाड़-भूमि के लिए हमारे पूर्व पुरुषों ने अपना रक्त सींचा है, क्या वह हमारे हाथ से चली जाने दें।

अजीत—हम प्राण देकर अपने देश की रक्षा करेंगे !

दौलत—कहने और करने में भेद है। राजपूत की भाँति केवल उत्साह-प्रदर्शन से सफलता नहीं मिलती। हमें बनिये की तरह हिसाब भी लगाना चाहिए। अपनी और शत्रु की शक्ति को तराजू पर तोलना चाहिए।

अजीत—हाँ, यह ठीक है।

दौलत—मेवाड़ की आज क्या स्थिति है। देश में सुशासन नहीं है। राजपूतों के वे दल—जो युद्ध में मेवाड़ की शक्ति बनते थे—आज डाकू बनकर देश को आतंकित कर रहे हैं। वाणिज्य और कृषि अशान्ति के कारण बन्द है। राज्य-कोष में धन कहाँ से आये। युद्धों के लिए सेना और शस्त्र चाहिए। इसके लिए धन चाहिए। धन के लिए आन्तरिक शान्ति चाहिए और आंतरिक शान्ति के लिए पारस्परिक एकता। समझे, अजीतसिंह जी !

अजीत—इसमें सन्देह नहीं कि हम इस समय निर्बल हैं।

दौलत—हाँ, निर्बल ही नहीं, अत्यन्त शोचनीय स्थिति में हैं, जैसे—मुर्दा अंतिम साँसें लेता है। केवल हमारे पूर्व पुरुषों का बलिदान और हमारी दिवंगत वीर देवियों का पुण्य हमारे अस्तित्व को बनाए हुए हैं।

अजीत—हमारा ही नहीं सभी राजवंशों का यही हाल है।

दौलत—हमें बुराई में किसी से होड़ नहीं करनी है। मेवाड़ ने सदा ही देश के बुरे दिनों में नेतृत्व किया है, अब भी करना चाहिए।

अजीतसिंह—तो हम क्या करें ?

दौलत—सब सरदारों में प्रेम, महाराणा जी की प्रतिष्ठा, देश का सुशासन, व्यापार और खेती की वृद्धि और सैनिक शक्ति

का संगठन। बाहरी शक्तियों को अपने आपसी विवादों में निमन्त्रित करने का जो कुपरिणाम होता है—उसका एक ताजा उदाहरण जोधपुर में हमारे सामने आया है।

अजीतसिंह—क्या ?

दौलत—भोले आदमी, सर्वथा कूप-मंडूक बनकर न रहो। बाहर की भी खबर रखो। जोधपुर के सरदारों ने 'धोंकल' को गद्दी का स्वामी घोषित कर जयपुर-नरेश की सहायता से विद्रोह का झण्डा खड़ा किया था।

अजीत—हाँ, यह तो मुझे मालूम है ?

दौलत—उधर जोधपुर के महाराजा मानसिंह जी ने नवाब अमीरखाँ को बुलाया और उसे बीस लाख रुपये प्रदान किए।

अजीत—फिर ?

दौलत—जोधपुर के सरदारों ने भी अमीरखाँ को बीस लाख रुपये देकर महाराज के विरुद्ध सरदारों की सहायता करने के लिए कहा।

अजीत—और अमीरखाँ ने स्वीकार कर लिया ?

दौलत—हाँ, उसने विद्रोहियों के मुखिया सवाईसिंह जी से मित्रता के प्रमाण-स्वरूप पगड़ी भी बदली। इसी मित्रता के उपलक्ष्य में अमीरखाँ ने एक जलसा किया। उस जलसे में सवाईसिंह, धोंकल और सभी सरदार एकत्रित हुए। नृत्य-गान और मदिरा का दौर चला। जिस समय ये राजपूत सरदार जलसे के रंग में मस्त थे अमीरखाँ के सैनिकों ने आक्रमण करके सबको मृत्यु की गोद में सुला दिया।

अजीतसिंह—यह तो भयंकर विश्वास-घात है।

दौलत—हाँ। जोधपुर का न केवल चालीस लाख रुपया गया,

बल्कि उन सरदारों के बहुमूल्य सिर भी गए जो गाढ़े वक्त में काम आते।

[रमा का प्रवेश]

रमा—पिता जी! आप यहाँ हैं। मैं आपको बड़ी देर से खोज रही हूँ।

दौलत—क्यों बेटी?

रमा—महाराणा जी आपको बुला रहे हैं।

दौलत—चलो बेटी।

[सबका प्रस्थान]

[पट-परिवर्तन]

*

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—जयपुर का राज-दरबार

समय—दोपहर

[भव्य सिंहासन पर महाराज जगतसिंह बैठे हुए हैं । उनके दोनों ओर अन्य सरदार सामंत आदि बैठे हुए हैं ।]

महाराज जगतसिंह—जयपुर के वीर सरदारो, आज एक विशेष प्रयोजन से आप लोगों को कष्ट दिया गया है आप आज्ञा दें तो निवेदन करूँ ।

एक सामंत—क्या हमारी सम्मति का कोई मूल्य महाराजा साहब की निगाह में है ?

दूसरा सामंत—क्या महाराजा साहब सामंतों का उतना ही मूल्य समझते हैं जितना कि आपके पूर्व पुरुष समझते आए हैं ? आज तक कब आपने हमारी इच्छाओं, आकांक्षाओं को सोचा ? आप तो हमें अपना शत्रु समझते हैं ।

महाराज—इसका यह तात्पर्य है कि आप मेरी बात नहीं सुनना चाहते । राजगद्दी की ऐसी अवहेलना पहले कभी नहीं हुई ।

तीसरा सामंत—राज्य के सामंतों का—उन सरदारों का, जिनके साथ महाराजा साहब का रक्त का सम्बन्ध है—ऐसा अपमान पहले कभी नहीं हुआ जैसा श्रीमान् के द्वारा ।

महाराजा—यह आप लोगों का भ्रम है ।

चौथा—भ्रम है ! पुरुषोत्तम भगवान् राम के वंशज प्रतिष्ठित कछवाहा कुलावतंश जयपुर-नरेश एक वेश्या को लेकर इस राजगद्दी पर बैठकर इसे कलंकित करें और हमें आपके साथ-उसके

आगे भी सिर झुकना पड़े, यह हमारा अपमान नहीं तो और क्या है ?

पहला सामंत—इतना ही नहीं, राज्य के ऊँचे पदों पर दरजी, नाई, कहार आदि नीच जाति के लोगों को नियुक्त किया जाय, इसे हम राजपूत लोग सहन नहीं कर सकते।

महाराजा—आप लोग अपने अधिकार और सीमा के बाहर जा रहे है।

दूसरा—इस राज्य की स्थापना, विस्तार और रक्षा में हमारे पूर्वजों ने भी अपना रक्त सींचा है, महाराजा साहब ! इस गद्दी की मर्यादा और कीर्ति को कलंकित न होने देना हमारा कर्त्तव्य है।

चौथा—हमारा स्पष्ट निवेदन है कि यदि महाराजा साहब किसी कार्य में हमारी सम्मति और सहयोग की आशा करते हैं। तो पहले केसरबाई को जयपुर से निर्वासन देने की कृपा करें।

महाराजा—मेरे व्यक्तिगत कार्यों में हस्तक्षेप करने का आपको कोई अधिकार नहीं है।

पहला सामंत—आप भूलते हैं महाराजा साहब, राजा का कोई कार्य व्यक्तिगत नहीं है। हमें भगवान् रामचन्द्र के वंशज होने का अभिमान है जिन्होंने एक धोबी के कहने पर सती साध्वी भगवती सीता को वन में भेज दिया था।

महाराजा—वह अवतार थे। आप एक साधारण पुरुष से ऐसे ऊँचे आदर्श की आशा क्यों करते हैं ? आज ऐसा कौन-सा राजा है जिसे हम सच्चरित्र कह सकें। भगवान् राम ने सीता के निर्वासन के पश्चात् दूसरा विवाह नहीं किया, किंतु आजकल के

राजा तो एक साथ बीस-बीस विवाह करते हैं। इस पर भी संतोष नहीं होता तो दासियों पर कृपा की निगाह डालते हैं। आपको उसमें पाप नज़र नहीं आता ?

दूसरा सामंत—महाराजा साहब, आप तो विलासिता का नग्न प्रदर्शन करते हैं। राज-महलों में कुछ भी होता रहे उसमें गद्दी का सम्मान कम नहीं होता। आप एक वेश्या को वह सम्मान देते हैं जो एक राजपूत रमणी को ही मिल सकता है। आप केसर-बाई को हाथी पर अपने साथ बैठाकर नगर में से निकलते हैं—उसे अपने साथ गद्दी पर बैठाकर हमसे आशा करते हैं कि हम उसे राजरानी समझें—और उसके आगे शीश झुकायं। एक वेश्या के आगे सिर झुकाने की अपेक्षा हम सर कटाना पसन्द करते हैं।

महाराजा—केसर बाई का जीवन उतना ही पवित्र है जितना एक राजपुत्री का।

तीसरा सामंत—महाराजा साहब, आप अपनी जाति का अपमान कर रहे हैं ?

महाराजा—मेरे वीर और बुद्धिमान सामंतो, मैं यह स्वीकार करता हूँ कि मैंने परंपरागत राज-मर्यादा के विरुद्ध काय किया है। जिन संस्कारों और जिस वातावरण में आप पले हैं उसके कारण आपको मेरा आचरण नीचतापूर्ण जान पड़ता है, किंतु, मैं आपसे पूछता हूँ कि एक भोली बालिका, जिसमें रूप भी है और गुण भी, पाप-पथ पर चलने से बचना चाहती है, तो क्या उसे धक्का देकर फिर नरक में धकेल देना चाहिए ? क्या उसे आश्रय और सम्मान न देना चाहिए ?

चौथा सामंत—आप उसे आश्रय दें, सम्मान दें। उसे हीरे

जवाहरातों से ढक दें। किन्तु, जो स्थान राजपूत-वीरांगना का है—वह उसे नहीं मिल सकता।

पहला सामंत—आप उसके नाम जागीर लगा दे सकते हैं—महल बनवा दे सकते हैं—अपने अवकाश का समय उसे दे सकते हैं—किन्तु, राजगद्दी पर अपने साथ उसे नहीं बैठा सकते।

महाराजा—मैं जानता हूँ कि मेरे जीवन की सचाई को आप लोग स्वीकार न कर सकेंगे। आप लोग यही चाहते हैं कि पाप परदे के पीछे पनपता रहे। आप लोग नहीं चाहते कि पाप के पथ पर जाने वालों को पुण्य-मार्ग पर आने का अवसर दिया जाय। जो एक बार भूल से या परिस्थितियों के दबाव से कुपथ पर चला गया उसकी सन्तान भी उसी रास्ते पर जाय। यही आज के समाज का विधान है। जब तक उसी रास्ते को छोड़कर आने वाले को समाज में सम्मान स्थान नहीं मिलेगा वह सत्पथ पर कैसे आयगा?

दूसरा सामंत—महाराजा साहब रूप की उपासना, वासना की तृप्ति और निर्लज्ज असंयम को आप सुधार का जामा न पहनाइए। परंपरागत रूढ़ियाँ विशद अनुभव का परिणाम हैं। राजगद्दी पर बैठने वाले को उनका पालन करना आवश्यक है।

तीसरा सामंत—महाराजा साहब आपका अपमान करने के लिए हम ऐसा नहीं कह रहे। सर्व साधारण में आपके विषय में असम्मानपूर्ण चर्चा सुनकर हमें दुःख होता है। हिन्दुओं के सूर्य मेवाड़ के महाराणा जी की तीनों लोकों में उजियाला करने वाली परम सुन्दरी अपूर्व गुणवती राजकुमारी से आपका सम्बन्ध निश्चित हो चुका है। हम चाहते हैं कि आपका यश ऐसा हो जिससे हमारी भावी महारानी के हृदय में आपके प्रति

आदर और प्रेम की भावना विकसित हो।

महाराजा—मुझे इस बात का दुःख है कि मेरे व्यवहार से आप लोगों के दिल को ठेस पहुँची है। मुझसे आप किसी प्रकार की प्रतिज्ञा न लें, किन्तु मैं कहना चाहता हूँ कि यदि आप लोग मुझे अवसर देंगे तो मैं एक योग्य राजा, योग्य पति, और योग्य मनुष्य बनने का प्रयत्न करूँगा।

चौथा—हमें महाराजा साहब से यही आशा थी।

पहला सामंत—आज्ञा कीजिए, महाराजा साहब! क्या सेवा हमसे आप लेना चाहते हैं।

महाराजा—आप लोगों को पता है कि वर्तमान जोधपुर नरेश मानसिंह जी ने हमारे भांजे 'धोंकल' को धोखे से मरवा डाला है। वास्तव में धोंकल ही जोधपुर की गद्दी का अधिकारी था।

[एक सैनिक का प्रवेश]

सैनिक—दुहाई महाराजा साहब की!

महाराजा—क्या बात है?

सैनिक—महाराजा साहब, हमारी भावी महारानी जी के लिए जो पहरावा यहाँ से मेवाड़ भेजा गया था उसे मार्ग में जोधपुर की सेना ने छीन लिया।

दूसरा सामंत—क्यों?

सैनिक—उनका कहना है कि मेवाड़ की राजकुमारी का विवाह जोधपुर-नरेश महाराजा मानसिंह जी से होगा।

महाराजा—यह नहीं हो सकता।

तीसरा सामंत—हाँ, महाराजा साहब, जब तक एक भी कछवाहा जीवित है मेवाड़ की राजकुमारी जोधपुर की राजरानी नहीं बन सकती।

महाराजा—मैं इस अपमान का बदला लूँगा। जोधपुर के राठौरों को उनकी उद्दण्डता का दंड देना ही चाहिए। हमें शीघ्र ही मारवाड़ पर आक्रमण करना चाहिए।

चौथा सामंत—अवश्य महाराजा साहब!

महाराजा—तो आज का दरबार समाप्त होता है। आप लोग कछवाहों की मान-रक्षा करने के लिए जो कुछ कर सकते हैं अवश्य करेंगे इसका, मुझे भरोसा है।

सब—महाराजा जगतसिंह जी की जय।

(सब का प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन]

छठा दृश्य

समय—दिन के ९-१० बजे

स्थान—एक खेत का किनारा

[एक पेड़ की छाया में बैठकर संग्रामसिंह हुक्का पी रहे हैं। अब उनका वह सरदारी और सैनिक वेश नहीं है, फिर भी उनके व्यक्तित्व की भव्यता छिपाए नहीं छिपती। दौलतसिंह जो प्रवेश करते हैं, जिन्हें आते देखकर संग्रामसिंह दौड़कर गले मिलते हैं।]

संग्राम—कब आए ?

दौलत—बस आ ही तो रहा हूँ।

संग्राम—मैं खेत पर हूँ, इसका पता कैसे चला ?

दौलत—पहले तुम्हारे घर गया था। तुमने ये क्या ठाट बनाए हैं ? तलवार छोड़कर हल पकड़ा है।

संग्राम—क्या करता ? खाली दिमाग में प्रेत नाचते हैं—इसलिए किसी काम में मन लगाना ही चाहिए था।

दौलत—राजस्थान के राज-दरबारों में शक्तावत सरदार के लिए स्थान का अभाव है क्या ?

संग्राम—इस युग की राजनीति से मुझे घृणा हो गई है। जिस दलदल से मैं निकल आया हूँ उसमें फिर नहीं फँसना चाहता।

दौलत—लेकिन मेवाड़ की राजनीति तुम्हें फिर बुला रही है।

संग्राम—इस जीवन में बड़ी शान्ति है, दौलतसिंह जी।

दौलत—किन्तु मेवाड़ में घोर अशान्ति के बादल छाए हैं। उन्हें दूर करने के लिए सबल भुजाओं की आवश्यकता है।

तुम्हारी जन्मभूमि तुम्हें पुकार रही है। बाप्पा रावल की गद्दी का मान रखने के लिए तुम्हें जाना पड़ेगा।

संग्राम—मेवाड़ पर ऐसी क्या विपत्ति आ पड़ी है जिसके कारण आप इतने चिन्तित हो उठे हैं ?

दौलत—राजकुमारी कृष्णा के विवाह के कारण भयंकर स्थिति उपस्थित हो गई है।

संग्राम—टीका तो जयपुर भेजा गया था—क्या उसे महाराजा जगतसिंह ने स्वीकार नहीं किया ?

दौलत—मेवाड़ के राजवंश से सम्बन्ध स्थापित करने का सुअवसर कौन खोना चाहता है ?

संग्राम—तब फिर ?

दौलत—जोधपुर-नरेश मानसिंह जी कहते हैं कि विवाह हमारे साथ होना चाहिए।

संग्राम—सो क्यों ?

दौलत—क्योंकि राजकुमारी के विवाह की चर्चा पहले जोधपुर-नरेश से हुई थी।

संग्राम—स्वर्गीय महाराजा भीमसिंह जी के साथ ?

दौलत—वह कहते हैं यह सम्मान व्यक्ति का नहीं गद्दी का था। अब टीका दूसरी जगह भेजकर राठौरों का अपमान किया गया है।

संग्राम—यह तो 'आ बैल मुझे मार' वाली बात है।

दौलत—जयपुर-नरेश ने राजकुमारी के लिए जो पहराव भेजा था उसे जोधपुर वालों ने लूट लिया।

संग्राम—यह तो मेवाड़ और जयपुर दोनों का अपमान है।

जयपुर वालों ने इसका कुछ प्रतिकार नहीं किया।

दौलत—ऐसा कहीं हो सकता था? कछवाहों की एक बड़ी सेना ने जोधपुर पर धावा बोल दिया। महाराजा मानसिंह ने पराजित होकर किले में शरण ली, लेकिन जयपुर के सरदारों में फूट पड़ जाने के कारण जगतसिंह जी को घेरा उठाकर वापस आ जाना पड़ा।

संग्राम—महाराजा मानसिंह ने हठ छोड़ी या नहीं?

दौलत—हठ छोड़ दें तो राठौर कैसे? अपने पूर्व पुरुष स्वर्गीय महाराजा जयचन्द की लीक पर ये लोग चलते हैं। जितने वीर हैं—उतने ही अभिमानी भी। नवाब अमीरखाँ को इन्होंने साथ मिलाया है। अपनी सेना के साथ उसकी भी सेना और तोपखाना लेकर महाराजा मानसिंह भी बरात चढ़ाकर उदयपुर पहुँच रहे हैं।

संग्राम—और जयपुर वाले भी।

दौलत—हाँ, दोनों ही। मेवाड जिसका भी पक्ष लेता है दूसरे का कोप-भाजन बनता है।

संग्राम—विवाह तो वहीं होगा जहाँ टीका चढ़ाया गया है—अभी सिसोदिया निस्तेज नहीं हुए हैं।

दौलत—सुना है अजीतसिंह और जवानदास जोधपुर के पक्ष में हैं।

संग्राम—इसका अर्थ यह है कि मेवाड़ की सेना हमारा साथ न देगी।

दौलत—यही तो चिन्ता का सबसे बड़ा कारण है। वेतन-भोगी सेना में यही तो बुराई है। वह न्याय या अन्याय नहीं देखती, अन्धी होकर स्वामी की आज्ञा मानती है। मेरे विचार

में वह सैनिक संगठन अच्छा था जब प्रत्येक व्यक्ति को सैनिक शिक्षा दी जाती थी और युद्ध के अवसर पर देश की रक्षा के लिए उन्हें बुलाया जाता था। इस तरह सैनिक शक्ति किसी एक व्यक्ति के हाथों बिक नहीं जाती थी।

संग्राम—मैं बचे हुए शक्तावतों को एकत्रित कर एक बार फिर जबर्दस्त खून की होली खेलूँगा। मेरे जीते जी मेवाड़ का अपमान नहीं हो सकता।

दौलत—तोपखाने के आगे हमारी तलवारें और बल्लमें क्या करेंगी? हमें केवल प्राण नहीं गँवाने हैं—अपना उद्देश्य भी सिद्ध करना है।

संग्राम—हमें केवल कर्म करना है। फल भगवान् के हाथ है।

दौलत—हमारा प्रयत्न व्यर्थ नहीं जायगा, इसका मुझे विश्वास है। तुम्हारे जैसे कर्मवीर की मेवाड़ को आवश्यकता है। वीर पुरुष सुख का साथी चाहे न हो लेकिन दुःख का अवश्य होता है। इसीलिए तुम्हें लेने मैं आया हूँ।

संग्राम—चलिए दौलतसिंह जी, इसी समय चलिए। मुझे एक क्षण का विलम्ब भी भारी जान पड़ता है।

[दोनों का प्रस्थान]

[पट-परिवर्तन]

सातवाँ दृश्य

समय—प्रभात

स्थान—उदयपुर की राजवाटिका

[कृष्णा वाटिका में घूम रही है, किसी पेड़ की डाली पर कोयल कूकती है।]

कृष्णा—(गीत)

कोयलिया मत बोल।
सदय जगत् का कठिन कुलिश-सा
यहाँ न मधु-रस घोल।
दुनिया के इस कोलाहल में
गीतों का क्या मोल? कोयलिया मत बोल।
रुक जाएगा, वाण बधिक का
खा कर, मुदित किलोल।
इस उपवन का माली ज़ालिम
फूलों पर मत डोल। कोयलिया मत बोल।
अंधी आँखों के आगे तू
अपना हृदय न खोल।
जग को जीवन दे न सकेगी,
विष में अमृत न घोल। कोयलिया मत बोल।

[रमा का प्रवेश]

रमा—वाह, वाह, तुम यहाँ गाने में मस्त हो—वहाँ महारानी जी प्रतीक्षा में बैठी हैं। चलो भीतर चलो।

कृष्णा—नहीं रमा, मैं नहीं आऊँगी। इस अनन्त आकाश

की सीमाहीन छत के नीचे मेरे रुद्ध हृदय को थोड़ी देर मुक्ति की साँस लेने दो। इन मुस्कराते हुए फूलों के सौरभ से अपने प्राणों को भर लेने दो। सुनती हो, वह कोयल कूक रही है, उसकी कूक में अपने हृदय की कूक मिलाने दो। पता नहीं फिर यह अवसर मिले, न मिले।

रमा—चार दिनों बाद तुम राजरानी बनोगी। अपार वैभव और प्रभुता की एकच्छत्र अधिकारिणी।

कृष्णा—नहीं रमा, मुझे यह वैभव का बन्धन नहीं चाहिए। मुझे स्वाभाविक जीवन चाहिए—मुक्ति चाहिए। वह देखो, वह चिड़िया इस डाल से उड़कर उस डाल पर बैठ गई है। उसे किसी ने नहीं रोका। ऊपर उस नील आकाश में कितने पक्षी पंख फैलाए उड़े चले जा रहे हैं। मुझे ऐसी मुक्ति चाहिए। वैभव के भार से मैं अपने पंख भारी नहीं करना चाहती।

रमा—तो तू राजकुमारी क्यों हुई?

कृष्णा—यही तो मेरा दुर्भाग्य है, रमा! मेवाड़ की राजकुमारी राजरानी बनने के लिए बाध्य है। चाहे महाराजा साहब संसार-भर के अवगुणों के भंडार हों। चाहे उनकी बीस रानियाँ, पचास रखेलियाँ और सौ वेश्याएं हों—फिर भी राजकुमारी को उनकी रानी बनने में अपना सौभाग्य समझना चाहिए।

रमा—इसमें हमारा क्या बस है, कृष्णा। सिसौदिया कुल राजपूतों में श्रेष्ठतम है। उनकी राजकुमारी क्या किसी छोटे-मोटे जागीरदार की पत्नी बन सकती है।

कृष्णा—विवाह की फाँसी गले में डालना क्या नितांत आवश्यक है?

रमा—फाँसी नहीं, यह नारी-धर्म है। नारी संसार में केवल

देने आई है, लेने नहीं। यदि वह कुछ लेती है तो संसार-भर का कष्ट, दुनिया-भर की वेदना, विश्व-भर का अभिशाप। आठों पहर घरों के बन्दीगृह में बन्द रहकर वह पुरुष को कर्म-क्षेत्र में भेजती है। वह दीपक की भाँति जलकर घर का अँधेरा दूर करती है। यही नारी की सार्थकता है। चलो बहन, तुम्हारे हाथों में मेंहदी और पाँवों में महावर लगा दूँ। महारानी जी की आज्ञा है।

कृष्णा—नहीं आज मेंहदी रहने दे।

रमा—क्यों ?

कृष्णा—मेरा एक चित्र अधूरा रह गया है उसे पूरा कर लूँ।

रमा—कौन-सा, मीरा का विष-पान।

कृष्णा—नहीं, वह तो पूरा हो गया। अब तो शंकर का विष-पान बना रही हूँ।

रमा—तुझे विष-पान-ही-विष-पान सूझता है, कृष्णा !

कृष्णा—हाँ, मुझे सम्पूर्ण संसार ही विषमय प्रतीत होता है। मुझे अपने बीच कोई शंकर के समान शक्तिशाली नहीं जान पड़ता—जो जग के जहर को पी ले और इसे विनाश से बचा ले।

रमा—तुम पागल हो गई हो, कृष्णा।

कृष्णा—हाँ, मैं पागल हो गई हूँ रमा, तुम सारे संसार से कह दो कृष्णा पागल हो गई है। वह मनुष्य से घृणा करती है। वह निर्जीव फूलों से बातें करती है। वह कोयल के अर्थहीन गीतों को सुनती है। वह आकाश के तारों से प्रेम करती है। वह ताल में चन्द्र-किरणों का नृत्य देखती है।

[महाराणा का प्रवेश और कृष्णा के सिर पर हाथ रखना]

महाराणा—बेटी कृष्णा !

कृष्णा—पिता जी !

महाराणा—तुम जानती हो—मरने की अपेक्षा जीवित रहना कठिन है।

कृष्णा—हाँ, पिताजी, शंकर की भाँति गले में हलाहल रख-कर जीवित रहना मनुष्य क्या देवताओं के लिए भी कठिन है। मैं शंकर के विष-पान का चित्र बना रही हूँ।

महाराणा—मैं सोचता हूँ।

कृष्णा—क्या सोचते हैं, पिता जी !

महाराणा—यही कि तू केवल चित्र बनाती और गीत गाती।

कृष्णा—तो मेरी दुनिया स्वर्ग हो जाती।

[महारानी का प्रवेश]

महारानी—लो, अब तो पिता और पुत्री मिल गए हैं—फिर भला क्यों चलने का नाम लेंगे ! और तू भी रमा यहीं की होकर रह गई।

कृष्णा—मैं तो·····

महाराणा—तुम भी आओ न, महारानी। कैसा सुन्दर समय है ?

महारानी—विवाह के कुल चार दिन रह गए हैं। महाराणा जी कुछ दुनियादारी भी पूरी करनी है।

महाराणा—तुम भी ठीक कहती हो, महारानी ! बेटी, हम पक्षी नहीं, मनुष्य हैं; वह भी साधारण नहीं—राजा। हमारे पंखों पर जहुत बोझ है। चलो बेटी, चलो।

[सबका प्रस्थान]

[पट-परिवर्तन]

आठवाँ दृश्य

स्थान—उदयपुर की झील में महाराणा का पशोला नामक संगमरमर का महल

[महाराणा अपनी बैठक में एक मसनद के सहारे बैठे हैं। कमरा राजसी ठाठ से सजा हुआ है। दीवारों पर सुन्दर तस्वीरें हैं। महाराणा के दोनों ओर अमीरखाँ, अजीतसिंह, जवानदास तथा दो और पठान सरदार बैठे हुए हैं। कमरे में दो हुक्के हैं—एक राजपूतों के लिए और एक पठानों के लिए।]

अमीरखाँ—मैं मेवाड़ के राजवंश का आदर करता हूँ—इसीलिए इससे पहले कि हमें बल-प्रयोग करना पड़े आपसे अन्तिम प्रार्थना कर लेना मैंने उचित समझा है।

महाराणा—कन्या का टीका एक स्थान पर चढ़ जाने के बाद दूसरे स्थान पर उसका विवाह-सम्बन्ध करना हमारे वंश की परिपाटी नहीं है।

अमीरखाँ—लेकिन टीका पहले जोधपुर भेजा गया था।

महाराणा—स्वर्गीय महाराजा भीमसिंह जी के लिए। वह भी केवल बात हुई थी, टीका भेजा नहीं गया था।

अमीरखाँ—बातचीत तो हुई थी यह क्या पर्याप्त नहीं है? मानसिंह जी उनके उत्तराधिकारी हैं—भाई हैं—आयु और गुण सभी बातों में—राजकुमारी के उपयुक्त हैं।

महाराणा—मुझे मारवाड़ के महाराणा साहब के गुणों पर सन्देह नहीं है।

अमीरखाँ—तो आप अंबर-नरेश से डरते हैं?

महाराणा—डरने का कोई प्रश्न नहीं है। एक स्थान पर रस्म हो जाने के बाद मुझे अपना निश्चय बदलने का कोई कारण

नज़र नहीं आता।

अमीरखाँ—इसका परिणाम ?

महाराणा—उसका उत्तरदायित्व मुझ पर नहीं है।

अमीरखाँ—इसका अंत आपके लिए दुःखद होगा।

महाराणा—सिसौदिया-वंश दुःखों से कभी नहीं डरा।

अजीतसिंह—जयपुर-नरेश के चरित्र के विषय में उनके सरदारों में असंतोष है। क्या हमें जान-बूझकर राजकुमारी को आग में झोंक देना चाहिए ?

महाराणा—(सरोष) अजीतसिंह, तुम भी इन लोगों से मिले हुए हो।

अजीतसिंह—नहीं महाराणा जी, मैं केवल सत्य को प्रकाशित कर रहा हूँ।

महाराणा—बाप्पा रावल की गद्दी के स्वामी का बचन एक होता है। जयपुर-नरेश मनुष्य नहीं राक्षस हों, मेरी पुत्री जीवन-भर नरक-यंत्रणा सहे, चाहे कुछ भी क्यों न हो लेकिन मेरा निश्चय नहीं बदल सकता।

अमीरखाँ—उदयपुर नगर की सीमा पर दो बरातें उपस्थित ठहरी हुई हैं। खून के समुद्र में सम्पूर्ण उदयपुर डूब जायगा।

महाराणा—मेवाड़ ने बहुत खून देखा है—अनेक खूनी बरसातें काटी हैं।

अमीरखाँ—किन्तु अब समय बदल गया है। अमीरखाँ के तोपखाने के आगे एकलिंगगढ़ की दीवारें ठहर नहीं सकतीं।

महाराणा—अरावली की घाटियों में मेवाड़ के राजवंश के लिए बहुत स्थान है। महाराणा प्रताप के वंशज राज्य-वैभव को

तिलाञ्जलि देने को सदा प्रस्तुत हैं, किन्तु वे अपनी आन नहीं छोड़ सकते।

अमीरखाँ—इसे कोई बुद्धिमानी नहीं कहेगा। राठौरों की हठ को सभी जानते हैं। महाराजा मानसिंह जी यह विवाह किये बिना नहीं लौटेंगे। मैं उनके साथ वचनबद्ध हूँ।

महाराणा—मैं भी जयपुर-नरेश के साथ वचनबद्ध हूँ।

अमीरखाँ—सिंधिया ने भी अपनी सेना हमारी सहायता के लिए भेजी है। जरा-सी हठ के कारण मेवाड़ और अम्बर दोनों का सर्वनाश हो जायगा।

महाराणा—किसी की लाल आँखें देखकर, अपना निश्चय बदलना सिसौदिया कुल का स्वाभाव नहीं है।

अमीरखाँ—अच्छा, आपकी इच्छा। आज संध्या तक का समय आपको देता हूँ। अनुकूल उत्तर न पाकर मेरी तोपें आग उगलने लगेंगी।

[अमीरखाँ का प्रस्थान, उनके साथी भी जाते हैं।]

जवानदास—इस भयङ्कर परिस्थिति का कुछ उपाय होना ही चाहिए। इस समय तो युद्ध करना आत्म-हत्या है।

महाराणा—घोर निराशा के समय मनुष्य आत्म-हत्या ही करता है। चुपचाप अन्याय को सह लेना कायरता है। सत्य के लिए प्राण देना ही वास्तविक वीरता है।

अजीतसिंह—मुझे एक उपाय सूझा है।

महाराणा—क्या ?

अजीतसिंह—महाराजा मानसिंह की मनुष्यता को जगाया

जाय। उन्हें मनुष्यता के नाम पर हत्याकांड से रोका जाय।

महाराणा—भोले हो अजीतसिंह, राजपूत होकर राजपूत की हठ को नहीं जानते। राजपूत का हृदय पत्थर से भी अधिक कठोर होता है।

अजीत—किन्तु कठिन कुलिश-हृदय के अन्तराल में अजस्र करुणा की मन्दाकिनी भी छिपी रहती है। राजपूत के हृदय के मर्म को छूने की चतुराई चाहिए।

महाराणा—ऐसा चतुर हममें से कौन है, अजीतसिंह जी!

अजीत—आप महाराणा जी, आपको एक कार्य करना होगा।

महाराणा—क्या?

अजीत—राजकुमारी की मृत्यु की आज्ञा लिखित रूप में प्रदान कीजिए।

महाराणा—(काँपकर लाल आँखों से अजीतसिंह की ओर देखकर) तुमने मुझे इतना कापुरुष और निर्दय समझा है।

अजीत—नहीं महाराणा जी, यह आज्ञा महाराजा मानसिंह जी की आँखें खोलने का साधन होगी। राजकुमारी की हत्या करना हमारा अभिप्राय नहीं है। हम उन्हें जता देना चाहते हैं कि जिस अनमोल महिला-रत्न को प्राप्त करने के लिए वह हजारों राठौरों के प्राणों की बाजी लगा रहे हैं उसे महाराणा जी ने संसार से उठाने का निश्चय किया है।

जवान—वह अपनी हठ के इस परिणाम से काँप उठेंगे। राजपूत के हृदय की करुणा-धारा उमड़ पड़ेगी—और यह हत्या-काण्ड रुक जायगा।

अजीत—हाँ महाराणा जी, आप पत्र में लिख दें, मेवाड़,

अंबर और मारवाड़ के सहस्रों योद्धाओं के खून से मेवाड़-भूमि को गीली होने से रोकने का एक-मात्र उपाय यही है कि युद्ध के हेतु को समाप्त कर दिया जाय ; इसीलिए अत्यन्त दुःख के साथ मैं राजकुमारी कृष्णा की मृत्यु की आज्ञा प्रदान करता हूँ।

जवानदास—(दवात-कलम काग़ज महाराणा को देते हुए) लिखिए महाराणा जी !

महाराणा—ओह, मेरा मन काँपता है। मेरी आत्मा विद्रोह करती है।

[पत्र लिखते हैं और अजीतसिंह को देते हैं]

अजीतसिंह—(पत्र जवानदास को देकर) तो महाराणा जी, आपने राजकुमारी की मृत्यु प्रदान कर दी।

[जवानदास का प्रस्थान]

महाराणा—यह तुम क्या कहते हो ?

अजीत—यदि जोधपुर-नरेश ने न माना तो इसके सिवा हमारे पास और क्या चारा है ?

महाराणा—यह धोखा है—कपट है, छल है ! कहाँ गया जवानदास बुलाओ (उठकर जाने लगते हैं।)

अजीत—(महाराणा को रोककर) उत्तेजित न हों, महाराणा जी ! देश की रक्षा के लिए पुत्री का बलिदान बड़ी बात नहीं है।

महाराणा—नहीं अजीतसिंह, मुझे मेवाड़ नहीं चाहिए—मुझे मनुष्यता चाहिए। मुझे मेरी पुत्री चाहिए।

[बाहर जाना चाहते हैं]

अजीत—बाहर अमीरखाँ के सैनिकों का पहरा है।

महाराणा—(लौटकर) तो मैं बन्दी हूँ। ऐसा विश्वास-घात।

(निराशा के भाव से) ओह अजीतसिंह। वीरवर चूड़ावत के वंशज अजीतसिंह, तुम इतनी नीचता का आश्रय ले सकते हो, इसकी मुझे कल्पना भी न थी। (लंबी साँस लेकर) मेरे प्राणों की प्रकाश कृष्णा! तुम क्या जानो अजीतसिंह। वह मेरे लिए क्या है? जब उसे देखता हूँ तो ऐसा जान पड़ता है मानो सावन की हरियाली देखी है, मानो ऊपर तक भरी झील देखी है—वसंत का फूला हुआ उपवन देखा है—नक्षत्रों से भरा हुआ आकाश देखा है। (सिर से मुकुट उतारते हुए) यह राजमुकुट जिसे अपने चरणों पर झुकाने के लिए १५०० वर्षों से बड़े-बड़े शक्तिशाली सम्राट् प्रयत्न करके थक गए, जिसके लिए सिसोदिया तथा अन्य राजपूतों ने हँसते-हँसते अपने प्राण दिये हैं, जिसका मान रखने के लिए हज़ारों वीर बालाएँ जौहर की ज्वाला में भस्म हो गईं—मेवाड़ के मान का प्रतीक वही राजमुकुट आज तुम्हारे चरणों पर पड़ा है। (अजीतसिंह के चरणों पर मुकुट रखते हैं) इसे तुम ले लो, मेरी कृष्णा मुझे दे दो।

[पटाक्षेप]

तीसरा अंक

पहला दृश्य

समय—सन्ध्या के पूर्व

स्थान—उदयपुर नगर के बाहर जयपुर-नरेश जगतसिंह का डेरा

[महाराजा सादी पोशाक में घूम रहे हैं। सहसा केसरबाई प्रवेश करती है।]

केसर—महाराजा साहब को केसर का नमस्कार।

जगतसिंह—(चौंककर) तुम केसरबाई, इस समय यहाँ ?

केसर—क्यों ? चौंकते क्यों हैं ? केसर को आपने प्रत्येक समय प्रत्येक स्थान पर आ सकने का अधिकार दिया है।

जगतसिंह—किन्तु यहाँ ? सरदार लोग क्या कहेंगे ? मेवाड़ी लोग क्या सोचेंगे ?

केसर—ओह ! आपको शर्म मालूम होती है। मेरा आपके साथ लज्जा का विषय है ? आपको तो इस बात का अभिमान रहा है कि आप मुझे समाज में सम्मान की अधिकारिणी बनायंगे।

जगत—मेरे हृदय में तुम्हारे लिए अपार प्रेम और आदर है लेकिन मैं संसार की सम्मति नहीं टाल सकता।

केसर—क्या आप प्रेम के लिए संसार नहीं छोड़ सकते ? आप मेरे हैं—मेरा संसार है। मैं आपको लेने आई हूँ।

जगत—केसर, प्रेम त्याग चाहता है।

केसर—केवल नारी से—पुरुष से नहीं।

जगत—आज तुम मुझसे लड़ने आई हो, केसर !

केसर—हाँ, महाराज ! अपने प्यार के लिए। अपने अधिकार

के लिए। मुझमें क्या नहीं ? फिर आप क्यों और विवाह कर रहे हैं ?

जगत—राजा अनेक विवाह कर सकता है।

केसर—एक वेश्या अनेक व्यक्तियों से प्रेम का खेल खेलती है और एक राजा अनेक रानियाँ रखता है। क्या दोनों समान नहीं हैं ? समाज क्यों राजा का आदर करता है—क्यों वेश्या का अपमान करता है और क्यों उससे घृणा करता है ?

जगत—मैं तुमसे तर्क नहीं करना चाहता हूँ, केसर ! मैं तुम्हारे हृदय की वेदना को समझता हूँ, किन्तु मैं बाध्य हूँ। तुम्हारी सन्तान जयपुर की राजगद्दी पर नहीं बैठ सकती। अतः मुझे विवाह करना आवश्यक और अनिवार्य है।

केसर—तो आज तक मैं मृग-मरीचिका के पीछे दौड़ रही थी। आपने मेरे प्राणों में आकांक्षा की आग जलाकर मुझे जलती रहने को छोड़ दिया। मेरा रोम-रोम झुलस रहा है, महाराज !

जगत—जगत् के अन्याय को सहन करने के लिए बहुत बलवान आत्मा चाहिए, केसर !

केसर—इतना बल मुझमें नहीं है। मैं जगत् से बदला लूँगी ! मैं अकेली नहीं जलूँगी, उसे भी जलाऊँगी। मैं अपनी रूप-ज्वाला को शून्य-मन्दिर का दीप नहीं बनाऊँगी। अपनी ज्वाला में सहस्रों शलभों को भस्म करूँगी।

जगत—यह तुम क्या कहती हो, केसर ! संसार ने अनेक बार तुम्हें मेरे पास हाथी पर बैठकर जाते देखा है—मेरे साथ राज-गद्दी पर बैठे देखा है—मैं तुमको अपना अपमान नहीं करने दूँगा।

केसर—इसलिए कि आप राजा हैं, उच्चवंशी राजपूत हैं—

आपके मान का मोल है। और मैं—मेरे मान का कोई मोल नहीं? अच्छा तो मैं जाती हूँ। आज मेरे जीवन का नया अध्याय प्रारम्भ होता है। आज रात्रि को महाराजा साहब की शादी के उपलक्ष्य में जयपुर के सभी सरदारों के सामने मेरा नाच होगा। आप भी आइएगा।

[केसर जाने लगती है—महाराजा जगतसिंह उसका हाथ पकड़ कर रोकते हैं। संग्राम का प्रवेश।]

संग्राम—ओह, बहुत बेवक्त आया। अच्छा जाता हूँ।

[जगतसिंह केसर का हाथ छोड़ देते हैं।]

केसर—क्यों, जाते क्यों हैं? मैं शेरनी नहीं हूँ। औरत हूँ।

संग्रामसिंह—संग्रामसिंह शेरनी से नहीं डरता—औरत से डरता है।

[जाने लगता है।]

जगत—वाह जी, आप तो सचमुच जाने लगे। यह तो हमारी केसर है। जैसे शङ्कर के सिर पर गङ्गा है, उसी तरह जगतसिंह के सिर पर केसर है। शङ्कर पार्वती के साथ विवाह करने गङ्गा को साथ लेकर गये थे।

केसर—मैंने सब-कुछ भर पाया महाराज। मैं इसी समय वापिस जयपुर जाती हूँ। जो सम्मान आज आपने मुझे प्रदान किया है, वह मेरे जीवन की सबसे मूल्यवान निधि है। केसर महाराजा साहब के राज-काज में और गृह-जीवन में, कहीं भी बाधा बनकर नहीं रहेगी। मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ कि मेरे कारण आपको कभी लज्जित न होना पड़ेगा। अच्छा नमस्कार!

[केसर का प्रस्थान]

संग्राम—इस नारी के प्रति मेरे हृदय में श्रद्धा उत्पन्न होती है। लोगों ने इसके विषय में अनेक बातें मुझसे कही थीं, किन्तु आज प्रत्यक्ष देखने पर भ्रम के बादल दूर हो गए।

जगत—केसर मेरे जीवन की मधुर पहेली है। और सदा पहेली ही बनी रहेगी। उसके विषय में सोचना व्यर्थ है। आइए बैठिए और बताइए कि दूसरे दल के क्या रंग-ढंग हैं?

संग्राम—बैठने के लिए हमारे पास समय नहीं है। हमें तुरन्त ही कुछ करना है। आप अपने चुने हुए ५०० योद्धा मुझे दें। आइए!

जगत—लेकिन·····

संग्राम—मैं रास्ते में सब बताऊँगा। चलकर तुरन्त ५०० निर्भीक, सिद्धहस्त और प्राणों पर खेल जाने वाले सैनिक दीजिए।

जगत—मैं सेनापति को बुलाता हूँ!

संग्राम—नहीं, प्रत्येक क्षण का मूल्य है, महाराजा साहब! आइए।

[दोनों का प्रस्थान]

[पट-परिवर्तन]

दूसरा दृश्य

समय—संध्या

स्थान—उदयपुर की राजवाटिका

[कृष्णा गाती हुई घूम रही है।]

कृष्णा—(गीत)

पी लूँगी, विष भी पी लूँगी।
पिए बहुत दिन सुख के प्याले,
दिल की कली खिलाने वाले,
अब आए दुख के दिन काले।
मैं हँस-हँस इनको भी लूँगी।
पी लूँगी, विष भी पी लूँगी॥
सदा स्वर्ग में रहने वाला,
हृदय प्रेम-रस में मतवाला,
इसे छेदने लाए भाला,
कर दो घाव, उसे सी लूँगी।
पी लूँगी, विष भी पी लूँगी।
मैंने गीत बहुत हैं गाए,
गाकर जग के प्राण जगाए,
अब तुम गला घोंटने आए,
अच्छा है, सरकर जी लूँगी।
पी लूँगी, विष भी पी लूँगी!

[रमा का प्रवेश। कृष्णा का ध्यान उसकी ओर नहीं जाता—वह अपने गीत में ही तन्मय है।]

रमा—अरी, ओ, विष पीने वाली।

कृष्णा—ओ हो रमा ! कब से खड़ी हो ?

रमा—तुम्हें क्या हो गया है, कृष्णा ! कैसे बुरे विचार तुम्हारे मस्तिष्क में घूमते रहते हैं।

कृष्णा—हूँ, यह तो ऐसे ही एक गीत गा रही थी।

रमा—मुझे धोखा देती हो, बहन। यदि तुम्हारा मन अपनी स्वाभाविक स्थिति में होता तो क्या तुम ऐसा भयानक गीत गातीं—और ऐसे समय जब कि राज-महल में तुम्हारे विवाह के गीत गाए जा रहे हैं।

कृष्णा—लेकिन, क्या यह विवाह हो सकेगा ? वे दो नरपुङ्गव जयपुर और जोधपुर के नरेश—क्या दोनों में से एक भी मनुष्य बन सकेगा ?

रमा—इस सौंदर्य की अप्रतिम प्रतिमा का पुजारी बनने का किस पुरुष को मोह नहीं होगा। नारी का रूप बड़े अनर्थों का कारण है। अनिंद्य छविमयी महारानी पद्मिनी ने मेवाड़ का विनाश करा दिया था। तुम क्या पद्मिनी से कम सुन्दर हो ?

कृष्णा—इसमें मेरा क्या अपराध है ?

रमा—अपराध तो उस विधाता का है जिसने तुम्हें रचने में अपनी सम्पूर्ण कला और सहृदयता समाप्त कर दी। लेकिन मुझे दुःख इस बात का है कि विधाता ने राजपूतों को वीरता के साथ सुमति क्यों नहीं दी।

कृष्णा—एक बात पूछूँ ?

रमा—हाँ पूछो।

कृष्णा—क्या कोई ऐसा उपाय नहीं हो सकता जिससे यह हत्या-कांड रुक जाय। इस मांस-पिंड के लिए हज़ारों सिसौदिया, कछवाहे

और राठौर अपने प्राण क्यों गँवायं ?

रमा—इसका हमारे पास क्या उपाय है ?

कृष्णा—क्यों ऐसा नहीं हो सकता कि दोनों में से कोई भी मुझे न पा सके।

रमा—तेल चढ़ने के बाद कन्या का विवाह रोका नहीं जा सकता। विवाह तो होगा ही—और उन्हीं के साथ जिनके साथ सगाई हुई है—चाहे तलवारों की छाया में भाँवरें पड़ें। यह कोई नई बात नहीं है। पहले प्रत्येक क्षत्राणी का विवाह तलवारों की छाया में होता था।

कृष्णा—तभी तो अनेक राजपूत अपनी बेटियों को जन्मते ही मार डालते थे।

रमा—सो तो अब भी मार डालते हैं, कृष्णा !

कृष्णा—तो मुझे क्यों नहीं मार डाला ?

रमा—बेटियों को मार इसलिए डालते हैं कि उनके विवाह में बहुत अधिक खर्च करना पड़ता है। अच्छे कुल का वर नहीं मिलता। मिलता है तो दहेज बहुत माँगता है। लड़कियों को अविवाहित रखें तो माँ-बाप नरक में जायं इसलिए उन्हें मार डालते हैं। कृष्णा, तुम तो मेवाड़ राजवंश की शोभा हो। तुम्हारे लिए तो अनायास वर टूटे पड़ रहे हैं।

[नेपथ्य से महारानी की पुकार 'रमा-रमा']

रमा—महारानी बुला रही हैं। मैं अभी आती हूँ। दो दिन बाद तू चली जायगी, इसलिए, आज एकांत में बैठकर बातें करने को मेरा जी चाहता है।

[नेपथ्य से फिर आवाज़ 'रमा']

रमा—आई महारानी जी !

[रमा का प्रस्थान । कृष्णा फिर वही गीत गाने लगती है । जवानदास प्रवेश करके तलवार म्यान से निकालकर कृष्णा पर पीछे से वार करना चाहता है। कृष्णा सहसा मुँह फेरकर जवानदास की ओर देखती है। जवानदास काँप उठता है । उसके हाथ से तलवार छूट जाती है ।]

कृष्णा—कौन काका जी, आप इस तरह काँप क्यों रहे हैं ? और नंगी तलवार !

जवानदास—मैं पापी हूँ, कृष्णा ! (कृष्णा के पैर पकड़ता है ।) मुझे क्षमा कर दो, राजकुमारी !

[महारानी और रमा का प्रवेश । जवानदास पैर छोड़कर खड़ा हो जाता है ।]

महारानी—क्या है कृष्णा ?

कृष्णा—(जवानदास की ओर इशारा करके) इनसे पूछो माँ ?

महारानी—क्या बात है जवानदास जी ! आपकी ज़बान बन्द क्यों है ?

[जवानदास महाराणा का पत्र महारानी को देता है । महारानी मन-ही-मन पत्र पढ़ती है ।]

महारानी—बस मेवाड़ की वीरता, बालिका के प्राण लेने पर उतर आई है। इसीलिए इतनी लम्बी-लम्बी तलवारें आप लोगों ने बाँध रखी हैं।

[कृष्णा महारानी से पत्र लेकर पढ़ती है।]

जवानदास—सभी सरदारों ने और महाराणा जी ने विचार-कर देखा है कि मेवाड़ की मान-रक्षा का इसके सिवा और कोई उपाय नहीं है।

कृष्णा—माँ, पिता जी की आज्ञा पूर्ण होनी चाहिए। तुम वीर राजपूतनी हो और मैं एक राजपूत-बाला हूँ। मैं तुम्हारे दूध को लज्जित नहीं करूँगी। अपने देश और कुल के हित के लिए प्राण चढ़ाने का अवसर सौभाग्य से ही मिलता है, माँ!

महारानी—लेकिन इस बलिदान की अभी आवश्यकता नहीं है।

कृष्णा—लेकिन माँ·····

महारानी—विवाद करने के लिए मेरे पास समय नहीं है। तुझे मेरी आज्ञा माननी चाहिए। पहले मैं महाराणा जी से मिलना चाहती हूँ। मैं इसी समय पशोला जाऊँगी।

जवानदास—वहाँ जाने का मार्ग आप न पा सकेंगी। वहाँ अमीरखाँ के पठानों का पहरा है।

महारानी—मैं भारत के प्राचीनतम राजवंश चौड़ा-कुल की पुत्री हूँ—क्षत्रिय नारी की तलवार मार्ग बनाना जानती है। (रमा से) संग्रामसिंह कहाँ हैं?

रमा—अपने नोहरे में होंगे।

महारानी—तू मेरे साथ चल।

रमा—कृष्णा को कौन देखेगा ?

महारानी—तू जल्दी लौट आना। तब तक राधा है ही ! चलो !

[महारानी, रमा और कृष्णा का प्रस्थान ! राधा प्रवेश करती है । तलवार उठाकर जवानदास को देती है।]

राधा—बस, इसी साहस पर मुझे महारानी बनाने चले हैं !

जवानदास—वह तो कली से भी अधिक कोमल है, राधा ! उसकी निष्पाप भोली आँखों ने जिस समय मेरी तरफ देखा मेरी कठोरता और निर्दयता पराजित हो गई । वे आँखें वज्र हृदय को भी पानी कर देती हैं।

राधा—लेकिन नारी-हृदय को पानी नहीं कर सकतीं। तुम्हारे अपूर्ण छोड़े हुए काम को पूर्ण करूँगी।

जवानदास—कैसे ?

राधा—(एक शीशी दिखाकर) इससे !

जवानदास—यह क्या है ?

राधा—विष ?

जवानदास—विष !

राधा—हाँ विष ! अब तुम जाओ !

[दोनों का प्रस्थान]

[पट-परिवर्तन]

तीसरा दृश्य

समय—रात्रि का प्रथम प्रहर

स्थान—उदयपुर की झील में पशोला नामक राजमहल

[महाराणा बेचैन स्थिति में घूम रहे हैं। अजीतसिंह एक स्थान पर खड़े हैं।]

महाराणा—अजीतसिंह !

अजीत—महाराणा जी !

महाराणा—अपनी तलवार उठाओ।

अजीत—किस लिए ?

महाराणा—अपने हाथ से मेरा सिर काटो।

अजीत—आपकी दशा पर मुझे भी दुःख हो रहा है। महाराणा जी, मस्तक पर राजमुकुट रखना कोई सरल कार्य नहीं है। कठोर कर्त्तव्य की बलिवेदी पर हृदय की कोमल भावनाओं की बलि देनी पड़ती है। स्वर्गीय महाराणा लाखा ने एक एक करके अपने ग्यारह पुत्रों को मेवाड़ के लिए बलि चढ़ा दिया था। स्वयं महारानी अपने पुत्रों को वीर-वेश में सजाकर रण-भूमि में भेजती थी। उनकी आँखों में कभी किसी ने एक आँसू भी नहीं देखा। क्या आप एक पुत्री का वियोग भी नहीं सह सकते ?

[सहसा नंगी तलवार लिये हुए संग्रामसिंह, महारानी और कुछ सैनिकों का प्रवेश]

अजीत—तुम यहाँ ? तुम्हें किसी ने रोका नहीं ?

संग्राम—क्षत्रिय को कहीं कोई रोक सकता है ? तुम्हारे पहरेदार अनन्त निद्रा में लीन हैं।

महारानी—(महाराणा को पत्र देती हुई) यह पत्र आपने लिखा है।

महाराणा—मुझे धोखा देकर लिखाया गया है। (अजीतसिंह की ओर इशारा करके) सब इन्हीं की कृपा है। जल्दी बताओ हमारी जीवन-ज्योति लगभग रही है न ?

संग्राम—हाँ, हमारे पूर्व-पुरुषों के पुण्य-प्रताप से। यह कायर जवानदास उस निष्पाप पुण्य-प्रतिमा के तेज को न सँभाल सका। उसके हाथ से अपने-आप तलवार छूट गई। ऐसा जान पड़ता है कि बाप्पा रावल की आत्मा ने आकर उसके हाथों की शक्ति छीन ली।

अजीत—किंतु संग्रामसिंह जी, राजकुमारी का बलिदान आवश्यक है। इसके सिवा मेवाड़ के मान की रक्षा नहीं हो सकती।

संग्राम—धिक्कार है अजीतसिंह जी, एक चूड़ावत के मुँह से ऐसे कायरतापूर्ण शब्द निकल रहे हैं। तुम उन चूंडा जी की संतान हो जिन्होंने अपने छोटे भाई के लिए मेवाड़ के राज-सिंहासन को लात मार दी थी। और छोटे भाई की रक्षा के लिए अपने दो पुत्रों की बलि चढ़ाई थी। तुम उन फत्ता जी की सन्तान हो जिन्होंने महाराणा के चित्तौड़ छोड़ देने पर भी सम्राट् अकबर से डटकर मुकाबला करते हुए प्राण दिए—जिनकी माता और पत्नी ने भी वीर वेष में शत्रु से लोहा लेते हुए वीर गति पाई थी। शत्रु को भी उनकी प्रशंसा करनी पड़ी है। अब तुम अपने पूर्वजों के यश को कलंकित करने पर उतारू हो ?

अजीत—चूड़ावतों के लिए तुमने जो मान प्रदर्शित किया उसके लिए मैं तुम्हें धन्यवाद देता हूँ। लेकिन मेरे भाई इस समय

स्थिति कुछ और है। हज़ारों राजपूतों की हत्या—केवल एक राजकुमारी के बलिदान से रोकी जा सकती है। सिसौदिया वंश में अपनी सन्तान के प्रति ऐसा मोह पहले कभी नहीं देखा गया जैसा आज देखा जा रहा है।

संग्राम—राजकुमारी सम्पूर्ण मेवाड़ और सारे सिसौदियों के मान की प्रतीक है। उसकी हत्या सम्पूर्ण मेवाड़ की हत्या है। उठो मेरे भाई, हठी राठौरों और दुष्ट अमीरखाँ की सेना पर शेर की भाँति टूट पड़ो। शक्तावत इस कार्य में तुम्हारे साथ होंगे। हम शत्रुओं को पराजित न कर सकेंगे तो कम-से-कम आन के लिए अपने प्राण तक चढ़ा सकेंगे।

महारानी—और यदि हमारे पुरुषों की तलवार शत्रु से लोहा लेने पर भी यदि उन्हें नीच मनोरथ से विरत करने में सफल न होगी तो हम वीरांगनाएं जौहर की ज्वाला में जलकर अपने प्राण देंगी। एक राजकुमारी ही नहीं राज-परिवार की सभी महिलाएं हँसती-हँसती ज्वाला में प्रवेश करेंगी। यह न समझो अजीतसिंह, कि हमें राजकुमारी के जीवन का मोह है।

संग्राम—चिंता क्या है—हमें उदयपुर के महल छोड़ने पड़ें। सिसौदियों के भाग्य ने बहुत उलट-फेर देखे हैं। चित्तौड़ का तीन बार साका हुआ है। तीन बार हज़ारों की संख्या में हमारी वीर बालाओं ने अग्नि को पवित्र किया है। हमारे पूर्वजों ने महाराणा प्रताप और महाराणा अमरसिंह के साथ जंगलों में कंद-मूल-फल खाकर दिन बिताए हैं। कंकरीली पहाड़ियों पर सोकर रातें काटी हैं।

महारानी—हमारे बच्चों को घास की रोटियाँ खानी पड़ी हैं।

उन दिनों भी ये ही चूड़ावत थे। ये ही शक्तावत थे। ये ही सिसौदिया थे। आज ये बिना पुरुषार्थ प्रदर्शित किए नीच शत्रु की हठ के आगे मस्तक झुका देना चाहते हैं।

अजीत—महारानी जी, चूड़ावतों का रक्त पानी नहीं हो गया है। लेकिन कोई अपना नाश अपने हाथ से नहीं करना चाहता। जब संग्रामसिंह जी जयपुर-नरेश की सहायता से चूड़ावतों का नाश करना चाहते हैं तो चूड़ावत क्यों न जोधपुर वालों का साथ दें।

संग्राम—भोले अजीतसिंह! ईर्ष्या से अंधे न बनो। संग्रामसिंह ने अपने कलेजे पर पत्थर रखकर अपनी बपौती छोड़कर जंगल में डेरा डाला है। अपने स्वत्व की प्राप्ति के लिए नीच उपायों का अवलंबन उसके स्वभाव में नहीं है। यदि आप यही समझते हैं कि इसमें मेरा षड्यंत्र है, तो उठाओ अपनी तलवार और मेरा सिर धड़ से अलग कर दो।

[सिर झुकाकर बैठता है।]

महारानी—क्या अब भी इसका विश्वास नहीं होता?

संग्राम—उठाओ तलवार, देखते क्या हो? अपने भाई के रक्त से अपनी ईर्ष्या की प्यास बुझाओ। भोली बालिका के रक्त से मेवाड़ के यश को कलंकित मत करो। युग-युग तक संसार कहेगा—सिसौदिया कायर थे, वे राठौरों से रण-भूमि में लोहा लेने से डरते थे, इसीलिए उन्होंने राजकुमारी को मार डाला।

अजीतसिंह—उठो भाई संग्रामसिंह जी तुमने मेरी आँखें खोल दी हैं। निश्चय ही ईर्ष्या ने मुझे अंधा कर दिया था। (महाराणा के पैरों में गिरकर) मुझे क्षमा कीजिए, महाराणा जी!

मैंने आपको बड़ा कष्ट दिया है।

महाराणा—लेकिन दंड तो तुम्हें दिया हा जायगा।

अजीत—दीजिए महाराणा जी, अवश्य दीजिए। मेरा शरीर कोल्हू में पिरवा दीजिए।

महाराणा—तुम्हारे लिए उपयुक्त दंड यही है कि तुम दोनों भाई मेरे सामने गले मिलो।

[संग्रामसिंह और अजीतसिंह गले मिलते हैं]

महाराणा—बहुत दिनों से मेवाड़ की दोनों भुजाएं एक दूसरी को काटने के प्रयत्न में थीं। इसीलिए मेवाड़ अपाहिज हो रहा था इसीलिए इस देश पर शत्रु लालचभरी निगाहें फेंकता था। अब मुझे किसी बात का भय नहीं है।

संग्राम—अब हम राजमहल में चलकर राठौरों से लोहा लेने की व्यवस्था करें। चलिए।

[सबका प्रस्थान]

[दृश्य-परिवर्तन]

चौथा दृश्य

समय—वही जो तीसरे दृश्य का है

स्थान—उदयपुर नगर के बाहर जोधपुर-नरेश मानसिंह के शिविर के सामने का मैदान

[महाराजा मानसिंह और दौलतसिंह प्रवेश करते हैं।]

दौलत—मैं आपको आपके शिविर से यहाँ मैदान में इसलिए घसीट लाया हूँ कि मुझे कुछ बातें केवल आपसे कहनी हैं। वहाँ अमीरखाँ जी के आगमन की संभावना सदा बनी रहती थी। आपको जो कष्ट हुआ है उस के लिए मैं क्षमा माँगता हूँ।

मानसिंह—कष्ट कैसा! सुन्दर चाँदनी रात है। बसन्त का महीना है। कैसी प्यारी हवा चल रही है। मन प्रफुल्लित हो रहा है, दौलतसिंह जी!

दौलत—इस समय मैं और आप दो विरोधी दलों में हैं, फिर भी आपको मेरे साथ आने में संकोच नहीं हुआ! आपने मेरा विश्वास कैसे किया?

मानसिंह—आपको मैं भली प्रकार जानता हूँ आप युद्ध-भूमि में यम से भी भिड़ जाने में नहीं डरते, किंतु षड्यन्त्र और धोखा आपके स्वभाव के विपरीत है। छल-विद्या आपने नहीं सीखी है।

दौलत—लेकिन आपने तो सीखी है।

मानसिंह—यह मुग़ल राज-दरबार का पुरस्कार है। अंबर

और मारवाड़ के राजवंशों को दिल्ली की राजनीति में सम्मिलित होना पड़ा है।

दौलत—दिल्ली से जो राजनीति जोधपुर में आई है—उसका मेरे साथ आपने कोई प्रयोग नहीं किया! आप अभी कच्चे हैं। (मुस्कराते हैं।)

मानसिंह—आपके व्यक्तित्व का अनादर करना क्या मेरे लिए सम्भव है? जिस व्यक्ति के हृदय में किसी के भी प्रति अहित की भावना नहीं है—जो दूसरों के दुःखों को भी अपने बना लेना चाहता है—उस भोलानाथ शंकर से कोई भी व्यक्ति छल नहीं कर सकता। यह बात नहीं है कि मैंने छल-प्रपंच का प्रयोग कभी किया ही नहीं। अपने उद्धत जागीरदारों और सरदारों का विनाश मैंने इन्हीं उपायों से किया है।

दौलत—लेकिन मैं समझता हूँ—हमें अपने चरित्र की ऊँचाई और जीवन की सचाई से अपने साथी सरदारों का मन जीतना चाहिए। उन्हें नष्ट करके हम अपनी ही शक्ति नष्ट कर रहे हैं।

मानसिंह—जब गले का हार ही फाँसी बन जाय तो मनुष्य क्या करे?

दौलत—शंकर के समान शक्ति अर्जित करे, जिसके शरीर पर विषधर सर्प भी शांत होकर फिरते रहते हैं। लेकिन मैं इस समय इन बातों पर विवाद करने नहीं आया। मुझे तो राजकुमारी कृष्णा के विवाह के विषय में कुछ चर्चा करनी है। मुझे विश्वास है कि आप मेरी बातों पर गम्भीरता से विचार करेंगे। उत्तेजना में मनुष्य विवेक को खो देता है।

मानसिंह—इसीलिए आप मुझे ठण्डी हवा में ले आए हैं।

[मुस्कराते हैं।]

दौलत—आप अपने-आपको हमारी स्थिति में रखकर सोचिए। क्या किसी उच्च वंशीय राजपूत-कन्या की सगाई एक जगह हो जाने पर—और वहाँ से बरात आ जाने पर भी, क्या दूसरे स्थान पर उसका विवाह हो सकता है ?

मानसिंह—जान-बूझकर मेरा अपमान करने के लिए टीका जयपुर भेजा गया है। जयपुर-नरेश ने एक बड़ी सेना लेकर मारवाड़ में जो विध्वंस का ताण्डव किया है—उसका प्रतिशोध भी मेरे लिए आवश्यक है। यह विवाह मेरे लिए मान का प्रश्न बन गया है।

दौलत—इन छोटी बातों पर अपार धन-जन का नाश कराकर हम राजपूत अपनी शक्ति को जर्जर कर रहे हैं। वीर पुरुष वीरों का आदर करते हैं—इसलिए सिसोदियों ने सदा ही राठौरों की सराहना की है। जोधपुर-नरेश को राजकुमारी के अनुपयुक्त समझा गया—इसीलिए टीका जयपुर भेजा गया—ऐसा समझना आपका भ्रम है। जोधपुर-नरेश अंबर-नरेश से किसी भी बात में कम नहीं हैं।

मानसिंह—ऐसा आप समझते हैं। महाराणा जी नहीं, और जयपुर-नरेश भी नहीं। अब तो तलवार ही फैसला करेगी कि राजकुमारी के उपयुक्त कौन है ?

दौलत—आप लोगों पर देश के और भी बड़े-बड़े प्रश्नों का भार है। आप इन व्यक्तिगत मानापमानों में अपने जीवन को उलझाए रहेंगे तो उस तरफ कौन देखेगा ?

मानसिंह—किस तरफ ?

दौलत—यही अपने देश की स्वाधीनता की रक्षा की ओर। मान लीजिए कि आज आप अमीरखाँ और सिंधिया की सहायता से जयपुर और मेवाड़ की शक्ति पर विजय पा जायंगे—किन्तु क्या यह धन का लोभी अमीरखाँ आपका साथ देगा? नहीं, यह आपको चूसकर, निस्सत्व बनाकर, जयपुर का पल्ला पकड़ेगा—उन्हें निचोड़कर मेवाड़ पर आँख गड़ायगा। हम विभक्त रहने के कारण बारी-बारी से विनाश के मुँह में चले जायंगे।

मानसिंह—जयपुर वाले भी तो मेरा विनाश करने पर उतारू हैं।

दौलत—पहले अपने मन को आप साफ कीजिए, उनका मन भी साफ हो जायगा। जिस समय जयपुर और जोधपुर की शक्तियों ने मिलकर सिंधिया का सामना किया था—उन्हें मुँह की खानी पड़ी थी। किन्तु विभक्त हो जाने पर हम सबको दबना पड़ रहा है—लाखों रुपए प्रतिवर्ष इनके हवाले करने पड़ते हैं। सोचिए तो मानसिंह जी, हम लोगों की कैसी हीन स्थिति हो गई है।

मानसिंह—हाँ, राजस्थान के नक्षत्र आजकल ठीक नहीं हैं।

दौलत—नक्षत्रों की गति भी बुद्धि और वीरता के मेल से बदली जाती है। यह निश्चयपूर्वक सत्य समझिए कि यदि डेढ़ चावल की खिचड़ी हम लोग पकाते रहे तो हमारे राज्य डेढ़ पीढ़ी भी जीवित नहीं रह सकते। हमारी ये भूमियाँ—जिन पर हजारों वर्षों से हमारे पूर्वज अपना रक्त सींचते आए हैं, जिनकी प्रत्येक टेकरी मस्तक ऊँचा कर वीरता और बलिदान की कहानियाँ कह रही है—सदा के लिए हमारे हाथों से चली जायंगी।

मानसिंह—क्या आप समझते हैं कि हम लोग एक हो सकेंगे ?

दौलत—क्यों नहीं ? प्रत्येक मनुष्य अपने कर्त्तव्य का पालन करे। दूसरे की त्रुटियाँ देखने की ओर उसका ध्यान न हो, तो बहुत-कुछ अनायास हो जाय। हमें देश-हित को निज-हित और निज-मान से ऊपर स्थान देकर त्याग और उदारता का परिचय देना चाहिए। आप अपने हाथ से राजकुमारी कृष्णा की गाँठ जयपुर-नरेश के साथ बाँध दें।

मानसिंह—आप बहुत कठिन परीक्षा लेना चाहते हैं !

दौलत—अपने देश की रक्षा के लिए। इस समय हमारे सामने बहुत कठिन समय है। यह देश का संक्रान्ति-काल है। प्रत्येक राजा अपना लाभ सोच रहा है, एक राज्य दूसरे को हड़पने की अभिसन्धि में है। इतिहास के पृष्ठ खोलकर देखो, ऐसे ही समय में देश पर विदेशियों को अधिकार करने का साहस होता रहा है। भारत में जिस समय चन्द्रगुप्त, अशोक आदि के शक्तिशाली राज्य थे और देश एकता के सूत्र में बँधा हुआ था, उस समय किसका साहस था कि इसकी तरफ़ आँख उठाकर देखता !

मानसिंह—यह ठीक है।

दौलत—हाँ, महाराज ! जब सम्राट् पृथ्वीराज और जयचन्द जी के समय में देश अनेक टुकड़ों में विभाजित हो गया—और प्रत्येक राज्य प्रतिस्पर्धा में पड़ गया, उस समय देश विदेशियों के हाथ जा पड़ा। उसके बाद मुसलमान बादशाहों का भी यही हाल रहा है। जब पठानों का राज्य अनेक टुकड़ों में विभाजित हो गया तो बाबर को भारत पर आक्रमण करने में सफलता मिली। ऐसा ही समय आज हमारे सामने है।

मानसिंह—भारत में केवल राजपूत ही तो नहीं हैं—मराठे हैं—मुसलमान हैं।

दौलत—हैं—अवश्य हैं—और जब तक वे भी सावधान न होंगे, भारत का भाग्योदय नहीं होगा। मराठों से देश को जो आशा थी वह पूर्ण होती नहीं दिखती। वीरवर शिवाजी ने जिस राष्ट्रीय भावना को सामने रखकर स्वाधीनता का युद्ध प्रारम्भ किया—उसे उनके वंशज और सरदार भूल गए हैं। उनकी तलवार अपने ही भाइयों पर उठने लगी है।

मानसिंह—ऐसी स्थिति में हम क्या कर सकेंगे?

दौलत—पहले अपनी शक्तियों को एकत्रित करके आत्म-रक्षा करने योग्य तो बनो, भाई! फिर सभी का देश के वास्तविक संकट की ओर ध्यान आकर्षित करना। मजबूत आदमी की आवाज सब सुनते हैं—कमजोर की कोई नहीं!

मानसिंह—बहुत अच्छा, मुझसे जो हो सकता है—वह मैं करूँगा।

दौलत—आपकी यह बात सुनकर मुझे कितना आनन्द प्राप्त हुआ है, इसका आप अनुमान नहीं कर सकते। चलिए पहले हम जयपुर-नरेश जगतसिंह जी को लेकर मेवाड़ के राज-महल में चलें। राजस्थान के आकाश से दुश्चिंता के बादल दूर करें।

[अमीरखाँ का प्रवेश]

अमीरखाँ—महाराजा साहब, आप यहाँ हैं। मैं आपको बड़ी देर से खोज रहा हूँ। ओ हो, यहाँ तो दौलतसिंह जी भी हैं।

दौलत—हाँ, खान साहब मैं भी हूँ। आपके दर्शन हो गए—

इसे मैं अपना सौभाग्य समझता हूँ।

अमीरखाँ—आप मुझे बनाते हैं।

दौलत—नहीं अमीरखाँ जी, मुझे आपसे बहुत बातें करनी हैं। आपके पास सेना है, तोपखाना है, वीरता है और बुद्धि है—यदि इनका इस देश के हित में उपयोग हो सके तो कितनी अच्छी बात है?

अमीरखाँ—हमारा इस देश पर स्वत्व मानने को आप तैयार हैं?

दौलत—क्यों नहीं। यह देश हमारी सबकी माँ है! यह हमारा सबका समान रूप से पालन करती है—हम सब भाई एक होकर अपनी माँ का मान बढ़ायं—अपने देश को शक्तिशाली बनायं! संकुचित मनोवृत्ति छोड़कर विस्तृत दृष्टिकोण से प्रत्येक बात को देखें। इस समय मेरे पास समय का अभाव है—मैं कल फिर आपके दर्शन करूँगा। (महाराजा मानसिंह से) चलिए महाराजा साहब!

[महाराजा मानसिंह और दौलतसिंह का प्रस्थान। अमीरखाँ आश्चर्य के साथ देखता है और प्रस्थान कर जाता है।]

[पट-परिवर्तन]

पाँचवाँ दृश्य

समय—वही जो तीसरे और चौथे दृश्य का है

स्थान—राजकुमारी कृष्णा का कक्ष

[राजकुमारी बैठी हुई वीणा बजा रही है और गा रही है।]

कृष्णा—(गीत)

पी लूँगी, विष भी पी लूँगी।
पिये बहुत दिन सुख के प्याले,
दिल की कली खिलाने वाले,
अब आए दुःख के दिन काले।
मैं हँस-हँस इनको भी लूँगी।
पी लूँगी, विष भी पी लूँगी॥
सदा स्वर्ग में रहने वाला,
हृदय प्रेम-रस में मतवाला,
इसे छेदने लाए भाला,
कर दो घाव, उसे सी लूँगी।
पी लूँगी, विष भी पी लूँगी।
मैंने गीत बहुत हैं गाए,
गाकर जग के प्राण जगाए,
अब तुम गला घोंटने आए,
अच्छा है, मरकर जी लूँगी!
पी लूँगी, विष भी पी लूँगी!

[राधा का प्रवेश। कृष्णा वीणा रख देती है।]

कृष्णा—राधा !

राधा—राजकुमारी जी !

कृष्णा—मेरा एक काम करेगी ?

राधा—आज्ञा कीजिए।

कृष्णा—मेहमानों के अमल-पान के लिए जो अफ़ीम अपने यहाँ है, उसे मिलाकर तू मुझे कुसुम्बा ❀ बना दे।

राधा—किसलिए, राजकुमारी जी !

कृष्णा—मैं मरना चाहती हूँ, राधा !

राधा—मैं विष लाई हूँ।

कृष्णा—किसलिए ?

राधा—आपको मारने के लिए। तलवार के बेकार सिद्ध होने पर इसका प्रयोग करने की आज्ञा हुई है।

कृष्णा—तो ला शीशी मुझे दे। और प्याले में थोड़ा गुलाब जल ला।

[राधा कृष्णा के हाथ में शीशी देकर गुलाब-जल लेने जाती है।]

कृष्णा—[शीशी लेकर खड़ी होती है और गाने लगती है।]

पी लूँगी, विष भी पी लूँगी।

[राधा आकर प्याली देती है—कृष्णा उसमें विष डालकर पीती है। राधा विस्मयपूर्वक देखती है। कृष्णा विष पीकर प्याली राधा को देती है, राधा प्याली लेकर चली जाती है।]

❀ फूलों की पंखुड़ियों और ठण्डाई की चीज़ों के साथ अफ़ीम मिलाकर तय्यार किया हुआ ज़हर।

कृष्णा—(बैठकर फिर गाती है ।)

पी लूँगी,—विष भी पी लूँगी

पिए बहुत दिन सुख के प्याले,

[रमा का प्रवेश]

कृष्णा—रमा, तुम्हारे घुटनों पर सिर रखकर लेट जाऊँ, तुम्हें कष्ट तो न होगा ?

[कृष्णा रमा के घुटनों पर सिर रखकर लेटती है । रमा उसके सिर पर हाथ फेरती है ।]

रमा—अब अपने स्वामी की गोद में सिर रखकर लेटना ।

[रमा मुसकराती है । नेपथ्य में गीत की पंक्ति गूँजती है ।]

"अटक गया रानी का बजरा, नाव लगी है पार ।"

कृष्णा—सुनती हो कलुआ गा रहा है । तुम उसे यहाँ बुला लाओ ।

रमा—यहाँ रावला में—महारानी जी नाराज़ होंगी ।

कृष्णा—मेरी आज्ञा है ।

रमा—अच्छा जाती हूँ ।

[रमा का प्रस्थान, राधा का प्रवेश]

कृष्णा—राधा, एक सिरहाना दे !

[राधा सिरहाना देती है । कृष्णा सिर के नीचे तकिया लेकर लेट जाती है]

कृष्णा—राधा, यहाँ मेरे पास बैठ ।

[राधा कृष्णा के पास बैठती है]

कृष्णा—यदि मैं तुमसे विष न माँगती, तब भी क्या तू मुझे विष देती ?

राधा—हाँ !

कृष्णा—मेरे प्राण लेने में तुझे संकोच न होता ?

राधा—नहीं।

कृष्णा—क्यों ?

राधा—आप ऊँची जाति की लड़की हैं—आपकी मृत्यु से अनेक उच्च वंशीय नर-नारियों को दुःख होगा—इसलिए।

कृष्णा—दूसरों को दुखी देखकर तुझे सुख प्राप्त होता है।

राधा—हाँ, बदले की भावना ऐसी ही होती है।

कृष्णा—मुझे भी तू बुरा समझती है ? मुझसे भी वैर रखती है ?

राधा—नहीं ! लेकिन मैं कह चुकी हूँ—आपकी मृत्यु से उन लोगों के हृदय घायल होते हैं—जिनके प्रति मेरा मन विद्रोही है। इन उच्चवंशाभिमानियों ने हमें सम्मान पूर्वक जीने का कोई मार्ग खुला नहीं रखा है। हम चाहे जितने सच्चरित्र, ईमानदार, परिश्रमी, सत्यवादी और धर्मात्मा हों—हमें समाज में ऊँचा आसन नहीं मिल सकता ? जब ऊँची जाति वालों पर संकट आता है—तब हमें पैशाचिक आनन्द मिलता है।

[रमा का प्रवेश और कृष्णा के पास बैठना]

रमा—कलुआ नहीं मिला, पता नहीं कहाँ चला गया।

कृष्णा—मैं चाहती थी—मरते समय उस संसार के साथ भी थोड़ा संपर्क रखूँ जिसके साथ मेल रखने की राजमहल की मर्यादा

आज्ञा नहीं देती। [अपना कलेजा थामकर] बड़ा कष्ट हो रहा है, रमा !

रमा— (कृष्णा का सिर अपनी गोद में लेकर) तुम्हें क्या हो गया है, कृष्णा, तुम्हारे ओठ नीले पड़ रहे हैं।

कृष्णा—मैंने विष-पान किया है, रमा ! (राधा से) राधा, मेरी चित्रशाला से मेरे मीरा का विष-पान, शंकर का विष-पान और पद्मिनी का जौहर—तीनों चित्र ले आ। लाकर यहाँ मेरे सामने टाँग दे।

[राधा का प्रस्थान]

रमा—तुमने ऐसा क्यों किया—कृष्णा ! वैद्य को लाऊँ।

कृष्णा—पागल हुई है, मुझे शान्ति से मरने दे। विष मेरी नस-नस में व्याप गया है। संसार का कोई वैद्य मुझे नहीं बचा सकता।

[राधा चित्र लाकर टाँगती है। महारानी, महाराणा और संग्रामसिंह का प्रवेश]

रमा—अनर्थ हो गया, महारानी जी ! (खड़ी होती है) कृष्णा ने विष-पान कर लिया।

महारानी—हाय, मेरी बेटी ! (उसका सिर गोद में लेती है)

महाराणा—मेरी आँखों की ज्योति ! रूठ गई !

[कृष्णा के सिर पर हाथ फेरते हैं]

संग्राम—मैं वैद्य जी को·····

कृष्णा—काका जी, अब वैद्य का कुछ काम नहीं है। यम का विमान चल चुका है। जब तक हूँ आप लोगों से शान्तिपूर्वक बातें कर सकूँ, यह मेरी कामना है।

महाराणा—वह पत्र तो धोखे से लिखाया गया था। तूने इतनी जल्दी क्यों की ?

कृष्णा—जीवन-भर आपने मुझे हृदय का सम्पूर्ण स्नेह प्रदान किया। बदले में कुछ न चाहा। आज जब मेरा देने का समय आया—क्या मैं चूक सकती थी ?

महारानी—लेकिन मैंने तुझसे कहा था कि जब तक मेवाड़ में एक भी राजपूत जीवित है कृष्णा को मारने की आवश्यकता नहीं।

कृष्णा—मुझे दुःख है कि मैंने आपकी आज्ञा नहीं मानी—क्योंकि आपकी आज्ञा मोह का परिणाम थी। वह देखो माँ—मेरे बनाए हुए चित्र। मीरा जी में इतनी शक्ति थी कि संसार के दिये हुए विष को भी पीकर जी सकें। तुम्हारी कृष्णा की साधना इतनी ऊँची नहीं है। लेकिन यह समझती है—वह मरकर भी हज़ारों को जीवित कर जायगी। मेरे हाड़-मांस के अकिंचन शरीर के लिए अम्बर, मारवाड़ और मेवाड़ के वीर योद्धा अपने बहुमूल्य प्राण गँवायं, यह मुझे स्वीकार नहीं था। इसलिए—ओह (कराहती है।)

महाराणा—तेरे बिना मैं कैसे जी सकूँगा ?

कृष्णा—पिता जी, आपको जीना ही पड़ेगा। वह देखिए, भगवान् शंकर कंठ में हलाहल रखकर नील कंठ बन गए हैं। आप भी दुःख का कालकूट कंठ में रखकर संसार का उपकार कीजिए। दूसरों को दुःख से बचाने के लिए महापुरुषों को हलाहल पीना पड़ता है।

संग्राम—बेटी, तूने हमारे पौरुष पर अविश्वास किया, हमें अपना विक्रम दिखाने का अवसर न दिया।

कृष्णा—मैं जानती थी कि आप आ गए हैं और मेवाड़ में रक्त की बाढ़ लाने वाले हैं। इस बाढ़ में न केवल मेवाड़ डूबता बल्कि सम्पूर्ण राजस्थान गर्क हो जाता। इतना बड़ा पाप मैं अपने सिर पर नहीं लेना चाहती।

महारानी—तेरा यह फूल-सा शरीर क्या इसीलिए था ?

कृष्णा—माता जी, उधर देखिए, उस चित्र में महारानी पद्मिनी वीरांगनाओं के साथ जौहर की ज्वाला में प्रवेश कर रही हैं। देश और जाति का गौरव रखने के लिए प्राण देने में क्षत्राणियाँ अपना सौभाग्य समझती हैं। आपकी पुत्री ने आपके दूध को लजाया नहीं है, माँ, राजपूत-कुल का मस्तक ऊँचा किया है।

[दौलतसिंह का महाराजा जगतसिंह और महाराजा मानसिंह के साथ प्रवेश]

कृष्णा—आप भी आ गए ताऊ जी !

दौलत—आ गया हूँ बेटी ! और मुझे प्रसन्नता है कि मैंने महाराजा जगतसिंह और महाराजा मानसिंह जी में मेल करा दिया है। उन्हें साथ ले आया हूँ। अब तेरी भाँवरें ठीक मुहूर्त में पड़ सकेंगी।

कृष्णा—लेकिन, ताऊ जी, मेरी भाँवरें मुहूर्त से पहले ही पड़ गईं। यमराज की डोली मुझे लेने आ गई है। मैं जा रही हूँ। मुझे आशीर्वाद दो।

[हाथ जोड़ती है]

[पटाक्षेप]

हमारा रोचक नाट्य-साहित्य

विष-पान	(ऐतिहासिक)	हरिकृष्ण 'प्रेमी'	२.००
स्वप्न-भंग	(ऐतिहासिक)	हरिकृष्ण 'प्रेमी'	२.००
उद्धार	(ऐतिहासिक)	हरिकृष्ण 'प्रेमी'	२.००
शपथ	(सांस्कृतिक)	हरिकृष्ण 'प्रेमी'	२.५०
छाया	(सामाजिक)	हरिकृष्ण 'प्रेमी'	१.००
शतरंज के खिलाड़ी	(ऐतिहासिक)	हरिकृष्ण 'प्रेमी'	२.००
समर्पण	(सामाजिक)	जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द'	२.००
शक-विजय	(ऐतिहासिक)	उदयशंकर भट्ट	१.७५
उर्मिला	(ऐतिहासिक)	पृथ्वीनाथ शर्मा	१.००
सुभद्रा-परिणय	(पौराणिक)	वीरेन्द्रकुमार गुप्त	२.५०
शक्ति-पूजा	(पौराणिक)	बी० मुखर्जी 'गुंजन'	१.५०
शान्ति-दूत	(पौराणिक)	देवदत्त 'अटल'	१.५०
मानव प्रताप	(ऐतिहासिक)	देवराज 'दिनेश'	२.००
यशस्वी भोज	(ऐतिहासिक)	देवराज 'दिनेश'	२.००
हर्षवर्धन	(ऐतिहासिक)	वैकुण्ठनाथ दुग्गल	१.००
समुद्रगुप्त	(ऐतिहासिक)	वैकुण्ठनाथ दुग्गल	२.००
पग-ध्वनि		आचार्य चतुरसेन शास्त्री	१.५०
वितस्ता की लहरें	(ऐतिहासिक)	लक्ष्मीनारायण मिश्र	२.००
नए हाथ	(सामाजिक)	विनोद रस्तोगी	३.००
उधार का पति	(हास्य नाटक)	वनमाला भवालकर	१.००
बहू-बेटी	(पारिवारिक)	श्रीकृष्ण	०.७५
अभिज्ञान शाकुन्तल	(अनूदित)	इन्दुशेखर	३.००
समाज के स्तम्भ	(अनूदित)	सीताचरण दीक्षित	२.५०
भूमि कन्या सीता	(अनूदित)	भा० वि० वरेरकर	१.५०
कला के लिए	(अनूदित)	भा० वि० वरेरकर	१.५०
अ-पूर्व बंगाल	(अनूदित)	भा० वि० वरेरकर	१.५०
कोरी करामात	(अनूदित)	भा० वि० वरेरकर	२.००
रेलगाड़ी के डिब्बे	(एकांकी)	अरुण, एम० ए०	२.००
बादलों के पार	(एकांकी)	हरिकृष्ण 'प्रेमी'	३.००
आदिम-युग और अन्य नाटक	(एकांकी)	उदयशंकर भट्ट	४.००
सफ़र की साथिन	(एकांकी)	रामशरण शर्मा	२.००
एकांकी समुच्चय	(एकांकी)	जयनाथ 'नलिन'	३.००
भगवान मनु तथा अन्य एकांकी	(एकांकी)	लक्ष्मीनारायण मिश्र	२.५०
विश्वामित्र और दो भाव-नाट्य	(एकांकी)	उदयशंकर भट्ट	३.००
आनन्द का राजपथ	(एकांकी)	सीताचरण दीक्षित	२.२५

आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली-६